धर्म के नाम पर !!!

हत्या, अपराध, व्यभिचार, पाप, पाखण्ड, अनाचार,
झूठ, ठगी, धूर्तता, छल, बेवकूफ़ी ।



[धर्म-क्रान्ति की सर्वथा नवीन और जोरावर पुस्तक]

लेखक—
आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री

प्रकाशक—
इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां, देहली ।

प्रथमवार | सम्वत १९९० वि० | मूल्य १)

प्रकाशक—
इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां, देहली।

मुद्रक—
बा० बृजलाल बालूजा मैनेजर,
लाहौर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स, चांदनी चौक, देहली।

ग्रन्थकार का निवेदन



इस पुस्तक को पढ़कर मेरे बहुत से मित्र और बुजुर्ग मुझ पर हद दर्जे तक नाराज होंगे। सम्भव है मुझे उनकी मित्रता से भी हाथ धोना पड़े, क्योंकि उनमें से बहुतों की आजीविका पीढ़ियों से इस पुस्तक में वर्णित पाखण्डों के द्वारा ही चल रही है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि पुस्तक न तो किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके लिखी गई है और न इसे लिखकर मै किसी भी मित्र या अमित्र का अमङ्गल किया चाहता हूँ। इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यही है, कि मेरे देश के नवयुवकों के दिमाग़ इस पाखण्ड पूर्ण धर्म से आज़ाद हो जायँ, और वे स्वतन्त्रता पूर्वक जैसे अपने सुसंस्कृत और सुशिक्षित मस्तिष्क से अपने भले बुरे की और बहुत सी बातें सोचते हैं इस विषय पर भी सोचें। क्योंकि मेरी राय में हिन्दुओं की भविष्य नस्ल को—जो इन नवयुवकों की सन्तति होगी, मर्द बच्चा बनाने का एक मात्र यही उपाय है। और मैंने यह राय संसार की महा जातियों के नाश के इतिहासों का गम्भीरता पूर्वक मनन करके ही क़ायम की है।

इस लिये जिन मेरे भाइयों का दिल इस पुस्तक को पढ़कर दुखे; उनके चरणों में सीस नवाकर मैं प्रथम ही क्षमा मांगे लेता हूँ। क्योंकि इन पाखण्डों के बीच में जीवित रहकर मुझे उनसे कहीं अति अधिक दुःख हो रहा है।

पुस्तक बहुत जल्दी में केवल १ सप्ताह में लिखी गई है, क्योंकि उत्साही प्रकाशक महाशय इसे महात्मा गांधी के जगत प्रसिद्ध उपवास के पवित्र सप्ताह में ही प्रकाशित करने के इच्छुक थे। इस लिये इसमें जो भी त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिये भी सहृदय पाठक क्षमा करे।

दिल्ली
२१।५।३३

श्रीचतुरसेन वैद्य

पहिला अध्याय

धर्म क्या है ?

धर्म ने हज़ारों वर्ष से मनुष्य जाति को नाको चने चबाए हैं। करोड़ों नर नाहरों का गर्म रक्त इसने पिया है, हज़ारों कुल बालाओं को इसने ज़िन्दा भस्म किया है, असंख्य पुरुषों को इस ने ज़िन्दा से मुर्दा बना दिया है। यह धर्म पृथ्वी की मानव जाति का नाश करेगा कि उद्धार—आज इस बात पर विचारने का समय आगया है ।

धर्म के कारण ही धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ने जुआ खेला, राज्य हारा, भाइयो और स्त्री को दाव पर लगा कर गुलाम बनाया, धर्म ही के कारण द्रौपदी को पांच आदमियो की पत्नी बनना पड़ा। धर्म ही के कारण अर्जुन और भीम के सामने द्रौपदी पर अत्याचार किये गये और वे योद्धा मुर्दे की भांति बैठे देखते रहे। धर्म ही के कारण भीष्मपितामह और गुरुद्रोण ने

पांडवों के साथ कौरवों के पक्ष में युद्ध किया, धर्म ही के कारण अर्जुन ने भाइयों और सम्बन्धियो के खून से धरती को रङ्गा, धर्म ही के कारण भीष्म आजन्म कुंवारे रहे, धर्म ही के कारण कुरुओं की पत्नियो ने पति से भिन्न पुरुषो से सहवास करके सन्तान उत्पन्न कीं ।

धर्म ही के कारण राम ने राज्य त्याग वनोवास लिया, धर्म ही के कारण दशरथ ने रामको वनोवास दिया, धर्म ही के कारण रामने सीता को त्यागा, शूद्र तपस्वी को मारा, विभीषण को राज्य दिया ।

धर्म ही के कारण राजा हरिश्चन्द्र राज्य पाट छोड़ भंगी के नौकर हुए, धर्म ही के कारण बलि ठगे गये, धर्म ही के कारण कर्ण को अपने कुण्डल और कवच देने पड़े ।

धर्म के कारण राजपूतों ने सिर कटाये, उनकी स्त्रियो ने अपने स्वर्ण शरीर भस्म किये, रक्त की नदी बही । धर्म ही के कारण शंकर और कुमारिल ने, दयानन्द और चैतन्य ने, कठोर जीवन व्यतीत किये ।

आज धर्म के लिये हमारे घरों मे तीन करोड़ विधवाऐं चुपचाप आंसू पीकर जी रही हैं । ७ करोड़ अछूत कीड़े मकोड़े बने हुए हैं । धर्म ही के कारण पाखण्डी, घमण्डी और गवर्गण्ड ब्राह्मण सर्व श्रेष्ठ बने हुए हैं । धर्म ही के कारण पत्थरों की भद्दी और बेहूदी अश्लील मूर्त्तियाँ तक पूज्यनीय बनी हुई हैं । धर्म ही के कारण पत्थर को परमेश्वर कहने वाले पेशेवर गुनहगार पुजारी

लाखों स्त्री पुरुषों से पैरो को पुजाते हैं। धर्म ही के कारण भंगी प्रातःकाल होते ही अपनी बहू बेटियों सहित औरों का मलमूत्र सिर पर ढोता है, धर्म ही के कारण आज हिन्दू, मुसलमान और ईसाई एक दूसरे के जानी दुश्मन बने हैं।

धर्म के कारण ही सिक्खों ने मुग़ल काल में अंग कटवाये बच्चों को दीवार में चुनवाया, धर्म ही के कारण रोमनकैथालिकों के भीषण अत्याचार की भेंट लाखों ईसाई हुए, धर्म ही के कारण नीरों ने ईसाइयों को मसाल की भांति जलवाया। धर्म ही के कारण मुसलमानों ने पृथ्वी भर को रोंद डाला और मनुष्य के गर्म खून में तलवार रंगी। धर्म ही के लिये ईसाइयों ने प्राणों का विसर्जन किया।

आज धर्म के लिये सिपाही युद्ध-क्षेत्र में सन्मुख के मनुष्य को मारता है, धर्म ही के कारण वेश्याएं अपनी अस्मत बेचती हैं, धर्म ही के कारण कसाई पशु वध करता है। धर्म ही के कारण जीवहत्या करके मन्दिरों में बलि दी जाती है।

मैं जानना चाहता हूं कि सारी पृथ्वी में हज़ारों वर्ष से ऐसे उत्पात मचाने वाला, यह महाभयानक धर्म क्या वस्तु है। यह क्यों नहीं मनुष्य को मनुष्य से मिलने देता? क्यों नहीं मनुष्य को शान्ति से रहने देता? क्यो नहीं मनुष्य को आज़ाद होने देता? इसने शैतान की तरह दिमाग़ को ग़ुलाम बना लिया है। जो मनुष्य जिस रङ्ग में रङ्गा गया, उस के विरुद्ध नहीं सोच सकता—प्राण दे सकता है, यह इस प्रबल शक्तिशाली धर्म की करामात है।

वेश्या समझती है, कसब करना ही हमारा धर्म है, विवाहित होकर गृहस्थ बनना नहीं। अछूत समझता है, औरों का मैला ढोना ही हमारा धर्म है, उत्तम वस्त्र पहिनकर उच्चासन पर बैठना नहीं। ब्राह्मण सोचता है सब से श्रेष्ठ होना ही हमारा धर्म है, किसी की भी प्रतिष्ठा करना नहीं। सिपाही समझता है जिसकी नौकरी करते हैं, उसके शत्रु का हनन करना ही हमारा धर्म है, दूसरा नहीं। पुजारी समझता है, इस पत्थर को सर्व सिद्धि दाता भगवान् समझना ही हमारा धर्म है इससे भिन्न नहीं। मुसलमान समझता है, कि काफिर को कतल करना ही हमारा धर्म है दूसरा नही। विधवा समझती है मरे हुए पति के नाम पर बैठना, और सब के अत्याचार चुप-चाप सहना ही उसका धर्म है इसके विपरीत नही। जल्लाद समझता है कि अपराधी को फांसी देना ही धर्म है इसके विपरीत नही। गरज इस जादूगर धर्म के नाम पर पाप पुण्य अच्छा बुरा जो कुछ मनुष्य को समझा दिया गया है, मनुष्य उस में विवश हो गया है उससे वह अपने मस्तिष्क का उद्धार नहीं कर सकता।

इस धर्म को भिन्न भिन्न समयो मे भिन्न भिन्न रीति से लोगों ने मनन किया। बहुत से लोगो ने उसे केवल आध्यात्मिक बताया। बहुतों ने शरीर के साथ भी उसका संसर्ग कायम किया। परन्तु जब से मनुष्य ने धर्म शब्द पहचाना, तब से धर्म के नाम पर—हत्या, पाखण्ड, छल, कपट, व्यभिचार, जुआ, चोरी, हराम खोरी, बेवकूफी, ठगी, धूर्तता, अपराध और पाप सभी प्रशंसा

और क्षमा की दृष्टि से देखे गये। इस धर्म का यहाँ तक बोलबाला हुआ कि धर्म के नाम से ऐसी बहुत सी चीजें बेची जाने लगीं जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध न था। नदियों में स्नान करना धर्म, चिउंटियां और कोड़ों को खाने को देना धर्म, कपड़ा पहनना धर्म, गरज—चलना, फिरना, उठना, बैठना, सभी में धर्म का असर घुसड़ गया।

इस नकली, झूठे और निकम्मे धर्म का भाव भी बहुत ऊंचा चढ़कर उतरा। रोम के पोप मरने वालों से उनके पाप स्वीकृत करके स्वर्ग के नाम हुण्डी लिखाते थे। लाखों रुपये हड़प लेते थे। गया के पण्डे स्त्रियों तक को दान करा लेते थे। काशी और प्रयाग में लोग प्राण तक देते थे। परन्तु आज कल धर्म का दर कूड़े कर्कट से भी गिरा हुआ है। मन्दिर के पत्थर के सामने एक पाई फेंक देने से धर्म होजाता है। फटे कपड़े किसी दरिद्र को दे डालने से भी धर्म होजाता है। जूंठन किसी भूखे को दे देने से भी धर्म हो जाता है। किसी खास नदी में एक गोता लगाने, बड़, पीपल के ३-४ चक्कर लगाने, तुलसी का एकाध पत्ता चबाने, गाय का पिशाब पीने आदि से भी धर्म प्राप्त होजाता है। एकाध दिन भूखा रह कर फिर भाँति भाँति के माल उड़ाने से भी धर्म होता है। माथे पर साढ़े ग्यारह नम्बर का साइनबोर्ड लगाने पर भी धर्म होता है। किसी पाखण्डी ब्राह्मण को आटा, दाल दे देने, कुछ खिला पिला देने, या किसी भिखारी को एकाध धेला पैसा दे देने से भी धर्म होता है।

रास्ते चलते किसी सिन्दूर लगे पत्थर को सिर नवा देने से भी धर्म होता है। अगड़म बगड़म कोई ख्वास श्लोक जिसे कोई भी पाखण्डी बता सकता है जाप करने से धर्म होता है। नहाने से धर्म होता है, नङ्गा बैठकर और मेंढक की तरह उछल कर चौके में जाकर खाने से धर्म होता है। रात को न खाने से धर्म होता है। हाथो से बाल नोच लेने से, गन्दा पानी पीने से, मलमूत्र जमीन में गाड़ देने से धर्म होता है। मनों घी और सामग्री को अग्नि में फूंक देने से भी धर्म होता है।

अरे अभागे मनुष्यो! जरा यह भी तो सोचो—धर्म आखिर क्या बला है। तुम उस के पंजे मे क्यो फंसे हो? जातियो की जातियों का इस धर्म संघर्ष मे नाश हो गया पर धर्म को मनुष्यो ने न पहचाना, बौद्धो ने सारी पृथ्वी को एक बार चरणों में झुकाया पीछे उन्होंने रक्त की नदियां बहाई अन्त मे नष्ट हुए। ईसाइयों ने भी मनुष्यों मे हाहाकार मचाया। मुसलमानों ने शताब्दियों तक मनुष्यों को सुख की नींद न सोने दी। धर्म, मनुष्य जाति के हृदय पर पर्दा बना खड़ा है। पर मनुष्य उस से सचेत नहीं होता, सावधान नही होता।

ईसाइयों और मुसलमान के धर्म शास्त्र की चर्चा मैं छोड़ता हूँ। मेरी इस पुस्तक का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं के धर्म से है, मैं हिन्दू-धर्म की पुस्तकों पर ही अधिकतर कुछ कहना चाहता हूँ। हिन्दुओं की धर्म पुस्तकों के मुख्य तीन विभाग हैं। प्रथम विभाग में वेद, उपनिषद् और सूत्रग्रन्थ, दूसरे विभाग में स्मृतियां और

तीसरे मे पुराण हैं। यद्यपि हिन्दू जाति इन सभी पुस्तकों को धर्म-ग्रन्थ मानती है परन्तु इन सब में अनन्त मत भेद हैं; और इसी का यह फल है कि हिन्दू जाति धार्मिक दृष्टि से इतने भागो में विभक्त है कि जितने भागो मे पृथ्वी की कोई भी जाति नहीं। प्रत्येक के प्रथक् २ विश्वास हो रहे हैं। अकेले वेद और उसके साहित्यको धर्म ग्रन्थ मानने वालोंके सम्प्रदायोंकी ही गिनती करना कठिन है। स्मृतियों का काल, वर्णन, सब एक दूसरे के प्रतिकूल है। और पुराणों का तो हाल यह है कि उन से वेद और प्राचीन साहित्य से प्रत्यक्ष में कोई तारतम्य ही नहीं दृष्टि आता। इन मे जिस ने जिस सम्प्रदाय को माना—वहीं उस का विश्वासी हो गया। इन भिन्न २ सम्प्रदाय, विश्वास और भावना के अधिकारियो के आचार विचार भी भिन्न २ हैं। कुछ लोग वेद को अपौरुषेय और यज्ञपरक मानते हैं। उनके मत मे वेद ज्ञान का भण्डार और ईश्वरकृत है, कुछ लोग वेद को अपौरुषेय किन्तु यज्ञपरक मानते हैं। उनका मत है कि वेद ईश्वर कृत हैं और उस मे ज्ञान नहीं—यज्ञ के उपयोगी मन्त्र मात्र हैं। उन मन्त्रों के अर्थों से कुछ मतलब नहीं, केवल मन्त्रो में कुछ शक्तिशाली प्रभाव है जो फल देता है। कुछ लोग वेद को ऋषियो द्वारा प्रणीत और ऐतिहासिक वस्तु मानते हैं। अन्ततः वेदो को यज्ञपरक मानने वाले हिन्दू जाति मे अधिक हुए हैं। सायण और महीधर जैसे भाष्यकार और निरुक्तकार भी इसी मत के हुए। एक समय ऐसा आया कि यज्ञ ही हिन्दुओ का सर्वोपरि धर्म हो-गया और सैकड़ों वर्ष तक

चला। उस यज्ञ मे क्या २ पाप पुण्य न हुये। यज्ञों के लिये घोड़े छोड़े जाते, युद्ध होते, राजाओं को व्यर्थ आधीन किया जाता, यज्ञ केलिये दिग्विजय की जाती, रक्त की नदियां बह निकलती। यज्ञों में राजा करोड़ों की सम्पदा ब्राह्मणों को दान करके भिखारी बन जाते। पीछे यज्ञो में पशु बध हुए। और भी भयानक स्थिति तो तब हुई, जब यज्ञ विधान तान्त्रिको के हाथ मे आये और मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि तथा भैरव, भैरवी, चण्डी, काली, कराली की सिद्धिया भी यज्ञों द्वारा ही सिद्ध की जाने लगीं।

यज्ञों का विरोधी दल उपनिषदो का भक्त मण्डल रहा। उस ने भक्तों को धर्म का काम मानने से इन्कार कर दिया। वह केवल मनन करने, ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञानी होने ही को धर्म मानने लगे। ऐसे लोग एकान्तवासी, त्यागी, तपस्वी और मुनि बने। ये दोनो ही दल समय २ पर खूब ही संघर्ष करते रहे।

बौद्धो के उदय के साथ हिन्दुओ का यज्ञ करने वाला धर्म दब गया था। वह फिर उभरा और तब यज्ञ नष्ट हो गये थे। यज्ञो के स्थान पर मूर्त्तियो की पूजा हिन्दुओं का सर्वोपरि धर्म बन गया। उस मूर्त्ति पूजा मे भी शैव वैष्णव और शाक्त तीन प्रधान सम्प्रदाय हुए। तीनों परस्पर विरोधी-शत्रु और आचार विचार मे एक दूसरे के सर्वथा विरोधी रहे।

तत्त्ववेत्ता और दार्शनिक लोगो की मध्ययुग में खूब धाक रही। और इन्होंने धर्म के नियमों को प्राय: उच्छृंखल रीति से समझा

तर्क और विवेक के चक्र व्यूह में बुद्धि को घुमाया। इसमें सब से अधिक चमत्कार योगशास्त्र ने प्रकट किया। योग के अद्भुत और अव्यवहारिक चमत्कारो पर आज भी पृथ्वी के मनुष्य विश्वासी हैं। एक हद तक योग भी उच्च कोटि का धर्म बन गया। जो कोई भी योगी हो सकता है, उसके लिये यह निर्विवाद बात है कि पूर्णतया धर्मात्मा और ईश्वर भक्त है।

स्मृतियां सूत्र ग्रन्थों के आधार पर बनी। धर्मसूत्र और गृहसूत्र बनते ही गये, जब तक यज्ञों के प्रपंच बढ़ते गये। पीछे तो इन स्मृतियों ने अनगिनत जातियाँ, अनगिनत आचार, अनगिनत लोकाचार मनुष्य समाज में उत्पन्न कर दिये।

पुराणों ने अन्तिम प्रभाव पैदा किया और भिन्न भिन्न प्रकार के महात्म्य, श्रद्धा पैदा करने वाली कहानियाँ, नये से नये ढकोसले और बे सिर पैर की बातें धर्म सम्पुट की भाँति उनमें भर दीं। लोग अन्धविश्वास और अज्ञान के पूर्ण वशीभूत होगये।

इन सभी धर्म ग्रन्थों में कुछ न था यह मेरा कहना नहीं। पुराणों से इतिहास की अप्रतिम सामग्री आज भी हमें उपलब्ध हो सकती है। तर्क, मीमांसा, योग और सांख्य मे बहुत बुद्धि गम्य बातें हैं। परन्तु यदि कोई वस्तु नहीं है तो धर्म। इन सभी धर्म ग्रन्थ कहाने वाली पुस्तकों ने यदि किसी विषय में हमें अन्धा और गुमराह बनाया है तो केवल धर्म ने।

तब धर्म क्या चीज़ है? जैसा कि हम कह चुके हैं—भङ्गी का धर्म पाखाना साफ करना, वेश्या का कसब कमाना और विधवा

का मरे पति के नाम पर बैठी रोया करना धर्म है। उस धर्म की हम चर्चा नही करते। धर्मशास्त्रों में धर्म की कैसी व्याख्या है, इस पर थोड़ा प्रकाश डालना चाहते हैं।

मनुस्मृति कहती है कि धीरज, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध ये धर्म के १० लक्षण हैं। इन दशो में सिपाही का धर्म हिंसा तो नहीं आया? इस मे सत्यासत्य की व्याख्या भी नहीं की गई। अब इस श्लोक मे वर्णित लक्षणों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर हम देखते हैं।

सब से प्रथम सत्य को लीजिये। सत्य धर्म का लक्षण है। मैं सत्य बोलने का व्रत लेता हूँ। मेरे पास १० हज़ार रुपये ज़मीन मे अत्यन्त गोपनीय तौर पर गड़े हैं, उसका पता चलना भी सम्भव नहीं। हज़ार पांच सौ ऊपर भी मेरे पास हैं। एक दिन चोर ने गला आ दवाया। कहा "जो है रख दो, वरना अभी छुरा कलेजेके पार है।" अब आप कहिये क्या मुझे सत्य कह देना चाहिये कि इतना यह रहा और १० हज़ार यहाँ जमीन मे गड़ा है? मेरी राय में ऐसा सत्य महामूर्खता का लक्षण होना चाहिये। जब दुर्योधन की मृत्यु का समाचार धृतराष्ट्र ने सुना, तो उन्हीं ने पूंछा—वह भीम कैसा वली है जिस ने मेरे बेटे दुर्योधन को मार डाला, उसे मेरे सन्मुख लाओ, मैं उसे छाती से लगा कर प्यार करूंगा। तब कृष्ण ने उन के सामने लोहे की मूर्त्ति सरका दी, जिसे वलपूर्वक इस भाँति अन्धे धृतराष्ट्र ने मसल डाला कि सच-मुच यदि भीमसेन उनके हाथ में चढ़ गये होते तो उन की चटनी

वन जाती। अब मैं पूंछता हूँ कि यहां छल करके कृष्ण ने अधर्म किया या नहीं ।

हिंसा की बात भी विचारनी चाहिये। मैं एक चींटी को मार कर हत्यारा कहाता हूँ, परन्तु एक सिपाही असंख्य मनुष्यों का वध करके भी वीर कहाता है। क्यों ? युद्ध में भी तो हत्या होती है, ऐसी हत्याऐं करने वाले पापी अधार्मिक क्यों नहीं।

इसी प्रकार प्रत्येक लक्षण को हम यदि कसौटी पर कसें तो हम धर्म के इन दश लक्षणों पर निर्भर नहीं रह सकते।

दर्शन-शास्त्र बताते हैं "यतो अभ्युदयः निःश्रेयस सिद्धि सधर्मः" जिस काम के करने से अभ्युदय और निश्रेयस दोनों की प्राप्ति हो वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है ऐहिलौकिक सर्वोच्च सुख, जिस में सब प्रकार की व्यक्तिगत और सामूहिक स्वाधीनता अधिकार प्रणाली, जीवन तारतम्य को धाराएं आगई। निःश्रेयस का अर्थ है—पारलौकिक सर्वोच्च स्थिति, अर्थात् मुक्ति। मुक्ति का अर्थ यह है कि जीवन के अन्तस्तल में मनुष्य की सब वासनाएं, इच्छाएं तृप्त हो जायें, उसका मन सब वस्तुओं से विमुक्त होजाये, उस के सब बन्धन नष्ट हो जाये। वह जन्म न धारण करे। यही मुक्ति है ।

मुक्ति के लिये मनुष्य को ऐहिलौकिक कर्म इस भावना से करने अनिवार्य हैं कि वह उनमें तनिक भी लिप्त न हो, और ऐसा व्यक्ति अभ्युदय की प्राप्ति नही कर सकेगा। इसीलिये ऐसे मनुष्य— जो मुक्ति की भावना के लिए ऐहिलौकिक सब स्वार्थों और

दूसरा अध्याय



सदुपयोग और दुरुपयोग

मेरा कहना यह है कि हिंसा कोई पाप नहीं है और अहिंसा कोई धर्म नहीं है। इन दोनों वस्तुओं का सदुपयोग धर्म और दुरुपयोग पाप है। एक जज अपराधी को फाँसी की आज्ञा देता है, अपराधी ने उस का कुछ नहीं बिगाड़ा, अपराधी से वह परिचित भी नहीं है, अपराधी पर वह क्रुद्ध भी नहीं। वह न्याय और शान्ति के अधिपत्य के पद पर बैठा है, वह बहुत गम्भीरता और विवेचन से यह देखता है कि अपराधी सार्वजनिक शान्ति के लिये वर्त्तमान समाज के नियमों के आधार पर विघ्न करता है या नहीं और जब वह ऐसा पाता है तो अपने उन बंधे हुए अधिकारों के आधार पर, जो उसे उस पद के कारण प्राप्त हैं अपराधी को मृत्यु तक फांसी पर लटकने तक की आज्ञा देता है। समय पर जेल अधि[illegible] और [illegible] उसे फांसी देकर मार

डालते हैं। जज, जेल अधिकारी, जल्लाद सभी को उस व्यक्ति से समवेदना होती है। इसलिये वे लोग हिंसक होते हुए भी पापी नहीं समझे गये।

मैं स्वयं भी जज का स्थान ले सकता हूँ। एक व्यक्ति ने मेरा वही अपराध किया है जो हर तरह जज की दृष्टि में अपराधी को फांसी का अधिकारी निर्णय करेगा। मैं स्वयं भी जज के बराबर ही बुद्धिमान् और योग्यता सम्पन्न व्यक्ति हूँ। मैंने स्वयं ही उसे फांसी देदी, जेल के और जल्लादों के प्रपंचों में भी मैं नहीं पड़ा। ऐसी दशा में मैं हिंसक और पापी हूँ।

क्यों? सुनिये, पहिली बात तो यह कि मैं न्याय करने का उत्तरदाई नहीं, यह मेरा काम न था,-दूसरे सिर्फ घटना का सम्बन्ध मेरे साथ था। इसलिये मैंने यह न्याय अपने हाथ में ले लिया। ऐसा करने मे मन से राग द्वेष तो था ही। तीसरे, आज मैंने लिया कल दूसरा लेगा। उसे मेरा उदाहरण काफ़ी है, उसे मेरी योग्यता से कोई सरोकार नहीं। अपराधी को कब्जे में करके फांसी देने की योग्यता तो उस मे है। तीसरे, अपराधी और उस के संरक्षकों को अपील का स्थान नहीं। मै स्वयं ही आरोपी और स्वयं ही अधिकारी बन गया, इसलिये मैं संमत, विवेकी, स्थिर और सत्य पर नहीं रह सका अतः मैं हत्याकारी हूँ और पाप का भागी हूँ।

मुसलमानो के पूज्य हज़रत अली एक बार एक अपराधी को क़त्ल करने लगे। जब वे तलवार लेकर अपराधी के पास

आये तो अपराधी ने क्रोध में भर कर उन्हें गालियां दीं और उन पर थूक दिया। इस पर अली को गुस्सा आगया। उन्होंने तल-वार रख दी और कहा—इस वक्त मै इसे कत्ल नहीं कर सकता क्योंकि मुझे गुस्सा आ गया है।

यह उदाहरण इस बात पर प्रकाश डालेगा कि वास्तव में हत्या या हिंसा में निर्भयता किस दर्जे तक उसे पुण्य वनाती है।

आप के पास एक घोड़ा है, उस की शक्ति का आप सदु-पयोग कीजिये वह आपकी गाड़ी को खींच कर जहां आप चाहें ले जायगा। और दुरुपयोग होने पर वही घोड़ा गाड़ी को गिरा कर चकनाचूर कर देगा।

मैं सत्य वोलना पसन्द करता हूँ, मैं सत्य को धर्म समझता हूँ, परन्तु मैं चिकित्सक हूँ। एक रोगी को देखने मैं गया, उसका हृदय वहुत दुर्वल है और उस की हालत अच्छी नही है, अब यदि उसे उत्साह और साहस नहीं मिलता है तो वह तत्काल मर जा सकता है। उसे देख कर मैं चिन्तित होता हूँ, परन्तु ऊपर से हंस कर लापरवाही दिखाता हूँ, रोगी से गप सप करता हूँ, हंसता हूँ और उसे अतिशीघ्र आरोग्य लाभ होने की आशा दिलाता हूँ यह सव विलकुल झूंठ है, परन्तु पाप नहीं। मैं इसे धर्म समझता हूँ।

और इस का कारण यह है कि इस झूंठ में मेरा कोई स्वार्थ न था केवल परोपकार की भावना ही थी।

पिछले अध्याय में मैंने चोर का उदाहरण दिया है। अब मैं फिर आप से पूंछता हूॅ कि चोर को सत्य के नाम पर गड़ा हुआ गुप्त धन बता देना धर्म है या बेवकूफी ? सब लोग यही कहते हैं कि धर्म की परीक्षा यह है कि वह सदा सज्जनों की रक्षा करे और दुष्टों का दमन करे। तब वह 'सत्य' धर्म कहां रहा ? जो चोर को तो माल दिलवाये और मालिक को लुटवा दे। वहां तो झूंठ बोलना ही धर्म है।

एक सिपाही दर्प से अपने को योद्धा कहता है, उसे शत्रुओं के हनन करने का गर्व है। जब वह खून की नदी बहा कर आता है, लोग गाजे बाजे से उस का सत्कार करते हैं वह वीर की भांति ऊंची गर्दन करके सब के बीच मे चलता है। मै पूंछता हूॅ— किस लिये उसकी हत्या हिंसा नहीं मानी गई ? पाप में नहीं सम्मिलित की गई ? इस में क्या युक्ति है ?

इस का उत्तर वही है जो मैं कह चुका हूँ। उस की उस खून खराबी मे सार्वजनिक शान्ति की भावना है, वह मानव जाति के प्रति कुछ त्याग भाव रख कर ही यह कार्य करता है। यहां हम उस विषय पर न जायेंगे कि उस का वह भाव ठीक है या नहीं।

इसी प्रकार और भी अनेक ऐसी बातें हैं कि जिन का सदुपयोग ही धर्म कहा जा सकता है। महाभारत में विश्वामित्र ऋषि का चण्डाल के घर मे घुस कर कुत्ते का सूखा मांस चुराने की बड़ी मज़ेदार घटना है। जब ऋषि वह सूखी हुई टांग चुरा

कर चलने लगे। तब चाण्डाल ने जग कर और ऋषि को पहचान कर बहुत भला बुरा कहा। इस पर ऋषि तनिक भी न झेंपे, उन्होंने चाण्डाल को ऐसा आड़े हाथों लिया कि बेचारे की बोलती बन्द हो गई। उन्होंने कहा "अरे, ढीढ़! तू मुझे उपदेश देने का साहस करता है? मैं जो कुछ करता हूँ उसे खूब समझता हूँ और मैं अवश्य करूंगा।"

जहां एक तरफ ऐसी कुत्सित और बीभत्स चोरी-ऐसे बड़े महात्मा द्वारा की जाने पर भी वह दोष पूर्ण नही मानी गई, वहां हम महाभारत ही मे एक दूसरी घटना पाते हैं।

शंख और लिखित दो भाई थे। शंख ज्येष्ठ था, दोनो ऋषि थे। दोनों के आश्रम पृथक् २ थे। लिखित भाई से मिलने उन के आश्रम में गये। भाई बाहर गये हुये थे। लिखित ने आश्रम से एक पका मधुर फल तोड़ा और खाने लगे। इतने ही में शंख आ गये। शंख ने देख कर कहा—अरे! यह तुम ने क्या किया? यह फल कहां से पाया?

लिखित ने हंस कर कहा—"यहीं से तोड़ा!"

शंख ने चिन्तित होकर कहा—"यह तो बुरा हुआ, अरे! यह तो चोरी हुई?"

लिखित ने व्याकुल होकर कहा—"क्या यह चोरी हुई?"

शंख ने दुःखी होकर कहा—"निःसन्देह! तुम अभी राजा सुधन्वा के पास जाओ और दण्ड की याचना करो।"

लिखित उसी समय सुधन्वा की ड्योढ़ियों पर पहुँचे। ऋषि का आगमन सुन कर उन्होंने मन्त्रियों सहित द्वार पर आकर उनका सत्कार किया और भीतर ले गये। कुशल पूंछा, पूजा की और हाथ बांध कर कहा "ऋषिवर् ! आज्ञा से कृतार्थ कीजिये।"

ऋषि ने कहा "राजन् हमने चोरी की है--हमें दण्ड दीजिये। उन्होंने सब घटना भी सुना दी। राजा ने सुन कर कहा--ऋषिवर ! राजा को अभियोग सुनकर अपराधी को अपराध के गुरुत्व पर विचार करके जैसे दण्ड देने का अधिकार है; वैसे ही उसे क्षमा करने का भी। मैं आप को क्षमा करता हूँ। ऋषि ने कहा--"नहीं राजन्, मैं दण्ड की याचना करता हूँ"। तब राजा ने विवश हो राजनियमानुसार ऋषि के दोनों हाथ कटवा लिये। तब लिखित खून से टपकते दोनों कटे हुये हाथों को लिये भाई के पास जाकर बोले--भाई, मैंने राजा से दण्ड प्राप्त कर लिया है; अब आप भी क्षमा कर दीजिये।

यह छोटी सी हृदय को हिला देने वाली घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि अकारण एक फल भाई के बाग़ से बिना आज्ञा तोड़ कर खाना कितना गुरुतर अपराध है, और सकारण चाण्डाल के घर से सूखा कुत्सित मांस चुराना भी अपराध नहीं प्रत्युत कर्तव्य है।

इन सब बातों के अलावा कुछ ऐसी बातों का दुरुपयोग होता रहा है जिनका यदि सदुपयोग होता तो अवश्य ही उससे जगत् का कल्याण होता।

पुण्य के भागी हैं। क्योकि वह रुपया तो उन्ही की कमाई का है। यदि वे न कमावे तो पूञ्जी के द्वारा कोई भी धन पति रुपया कमा नहीं सकता। उस पर उन का अधिकार है। परन्तु कैसे मज़े की बात है कि वे कमाने वाले मज़दूर लोग तो कुत्तो की तरह मैले कुचैले, भूखे नंगे और संसार के सब भोगो से रहित होकर जीवन व्यतीत करते हैं और उन की कमाई को हड़पने वाले उनके रुपयों से सुनहरी दीवारो के मन्दिर बनवाते हैं—जिन मे हीरे और पन्नोंकी प्रतिमाएं रहती हैं।

अफ़सोस तो यही है कि इन स्वार्थी ठगों और लुटेरे अमीरो के दांतों में उंगली डाल कर गरीबो के हक के पैसे निकालने वाले अभी देश मे नही पैदा होते। सेठ मोटेमल जी ने एक लाख रुपया अछूतोद्धार को दिया, उन्हे धन्यवाद है। अखबारों मे मोटे हैडिंग छपते हैं। पर कोई सम्पादक यह नहीं पूंछता कि यह रुपया देने में उन्होंने कुछ त्याग भी किया है? उन्हे कुछ कष्ट भी इससे हुआ है? क्या उन्होंने अपनी रहने को कोठी बेच कर दिया है, या स्त्री के निकम्मे गहने बेच कर? या अपना अनावश्यक फर्नीचर बेच कर। हम तो देखते हैं कि सट्टे में बीस लाख कमाया। एक लाख दे दिया। वाह वाही लूट ली।

अजी, मैं यह पूंछता हूँ कि मैं डाका डाल कर, खून करके या और कोई जालसाजी करके कही से दश बीस लाख रुपया ले आऊं तो उस मे लाख पचास हजार रुपये दान कर [illegible] क्या धर्म नहीं होगा? मेरा पाप नष्ट हो

होगा तो इन चालाक अमीरों के दान भी धर्म खाते नहीं समझे जावेंगे, और उन के अपराध पूर्ण आमदनी के ज़रियें कभी क्षमाकी दृष्टि से नहीं देखे जावेंगे।

बड़े बड़े व्यापारियों के यहां, कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली मे एक धर्मादा खाता होता है। वे व्यापारी जितने रुपये का माल ग्राहकों को बेचते हैं उन से धर्मादा भी कुछ लेते हैं। यह यद्यपि उनके गांठ का नहीं होता, पर उसे स्वेच्छा पूर्वक ख़र्च करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है। और आप क्या कल्पना कर सकते हैं कि यह रुपया किस काम में ख़र्च किया जाता है ? वे बेईमान धूर्त अमीर उस से अपनी बेटी का व्याह करते हैं। मरे हुये माता पिताओ का कारज करते हैं। मैने स्वयं ऐसे उदाहरण देखे हैं। यह धन लाखों रुपयों की संख्या में एकत्र हो जाता है।

अब सत्यवादी हरिश्चन्द्र का उदाहरण लीजिये। आज तक लोग लाखों वर्ष से इस सत्यवादी राजा के दान की प्रशंसा करते, और उसकी रानी के कष्टों पर आँसू बहाते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि इस राजा को अपना समस्त राज्य एक मंगते को दे डालने का क्या अधिकार था। मुझे इससे कोई बहस नही कि वह मंगता श्रेष्ठ ऋषि विश्वामित्र थे—और इन्द्र के भेजे हुए उसकी परीक्षा के लिये आये थे। मैं तो इस बात पर विचार करना चाहता हूं कि क्या राजा को इस बात का अधिकार होना चाहिए कि वह चाहे भी जिसको अपना राज पाट दान करदे ? फिर मंगते की इस निर्दयता की भी कहीं निन्दा नहीं की गई कि उसने

दक्षिणा के लिये उसे और उसकी स्त्री पुत्र तक को बिकवा दिया। मैं यह भी जानना चाहता हूं कि यदि मैं स्वीकार कर लूं कि राजा को ऋषि का कर्जा चुकाना जरूरी था—तो क्या अपनी स्त्री और पुत्र को बेचकर कर्जा चुकाना उनका धर्म था? क्या मैं इस बात को स्वीकार कर लूं कि भविष्य मे जब कभी कोई निर्दयी जालिम कर्जदार मेरी गर्दन पर सवार हो तब मैं अपनी स्त्री को और बच्चे को बाजार मे बेच दूं—यही मेरा धर्म है? मेरी स्त्री और बच्चा गोया अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं रखते। मैं इस पुस्तक के पाठकों से पूछता हू कि उनमें कितने ऐसे हैं जो ऐसे मौके पर इस धर्म का पालन करेंगे। अपनी स्त्री और बच्चे को बीच बाजार बेच देंगे।

राज्य राजा की सम्पति है या राष्ट्र की, इसका फैसला तो आज पृथ्वी भर की जातियां मिलकर कर ही रही हैं, शीघ्र ही लोहू की लाल नदियां एशिया और योरुप के मैदानो मे बहने वाली हैं, पर वह हमारी चर्चा का विषय नहीं। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि राजा हरिश्चन्द्र का इस प्रकार मंगते को राज्य दान देना, और अपनी स्त्री पुत्र को बाजार मे इस प्रकार बेचना—अक्षम्य अपराध है।

इस से भिखारियों के प्रति लोगो के असाधारण अधिकार के भाव उत्पन्न होगये हैं। और भिखारी भी धृष्ट हो गये हैं। मैं समझता हूँ आज हजारों वर्ष से भिखारी लोग राजाओं और सर्व साधारण को कर्ण और हरिश्चन्द्र के उदाहरण देकर बढ़ावा दे देकर बेवकूफ बनाते और ठगते रहे हैं।

मैं फिर कहता हूँ देश के व्यापारी जो अपनी भयानक मशीनों और रहस्यपूर्ण बही खातों तथा पाप पूर्ण सट्टों और जुआ चोरियों के द्वारा करोड़ों रुपये कमाते और उन मे से लाखों दान करते हैं; वे कभी भी धर्म के अधिकारी नही, क्षमा के योग्य भी नहीं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ये व्यापारी देश के पुत्र नहीं, देश के साथ उन की कोई सहानुभूति भी नहीं। देश के दु:ख के साथ उन का दु:ख और देश के सुख के साथ उन का सुख भी नहीं। वे विदेशी सरकार की भांति, तस्मे के लिये भैंस हलाल करने वाले निर्दयी स्वार्थी हैं। हाल ही में रूई, घी, अन्न, सस्ते होने पर ये लोग सिर पीटने लगे और इन के पेट फट गये। ये लोग मंहगाई बने रखने को सभी सद्, असद् उपाय काम में लाते रहते हैं। आज देश सरकार की स्वार्थान्धता को भी नहीं सहन करता तो इन पतली दाल खाने वालों को योंही कैसे छोड़ देगा। ये घरेलू चूहे हैं जो स्वयं क्षुद्र होने पर भी सिर्फ कुतर कुतर कर अनगिनत हानि कर रहे हैं।

ये श्रीमन्त व्यापारी केवल बड़े बड़े दान करके देशके भाई या धर्मात्मा नहीं बन सकते। इन के लाखों रुपये के ये दान पाप की कमाई का हिस्सा है। जो सट्टा, सूद, हरामीपन और ग़रीबों के पसीने से निचोड़ी हुई है। प्राचीन रजवाड़ो में राजा लोग डाकू लोगों से लूट का भाग लिया करते थे और वह रकम पाकर उन की तरफ से आंख मीच लिया करते थे। ऐसे दानो को ग्रहण करने वाले भी उसी श्रेणी के हैं। ऐसे धनको

दान करने वाले तो पापिष्ठ हैं ही, स्वीकार करने वाले भी धर्म हीन हैं। धर्म ग्रन्थों में यह बात भी विचार से लिखी पाई गई है कि धर्मात्मा को किस किस का धन, अन्न, और आतिथ्य स्वीकार करना चाहिये। तेजस्वी लोग कभी अन्याई का दान और आतिथ्य नहीं स्वीकार करते। महापुरुष कृष्ण ने जिस वीरता से दुर्योधन का राजसी स्वागत और आतिथ्य अस्वीकार करके धर्मात्मा विदुर का दरिद्र आतिथ्य स्वीकार किया था, यह बात विचारने के योग्य है।

यदि कोई अमीर अपने सतखण्डे महलों को सामने खड़ा हो कर ढहा दे, या उन्हें अस्पताल बनवा दे, ठाठ बाट की चीजें, जवाहरात, जेवर, जायदाद, सब सार्वजनिक सेवा में दान करदे और भविष्य में देश के साथ मजूरी करके खाय, जैसा कि देश खाता है। वैसे ही घरों मे रहे जैसे मे देश रहता है और निर्वाह के बाद देश के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर सार्वजनिक कार्य करे—कटे, मरे, जिए, फले फूले, तो निस्सन्देह वह धर्मात्मा है।

राजा महेन्द्रप्रताप और दर्बार गोपालदास के दान यद्यपि राजनैतिक भावनाओं से परिपूर्ण हैं, पर वे मेरी दृष्टि मे धर्म दान की श्रेणी मे हैं।

भाग्यहीन दारा, जब औरङ्गजेब द्वारा पकड़ा जाकर जल्लादों के साथ एक गन्दी और नङ्गी हथिनी पर दिल्ली के बाज़ारों में घुमाया गया, जहाँ वह सदा ही हीरे मोती लुटाता निकलता था। तब एक भिखारी ने उसे देख कर इस प्रकार कहा—दारा,

ओ वादशाह ! तूने हमेशा ही कुछ न कुछ मुझे दिया, आज भी कुछ दे। दारा के पास कुछ न था, वह जो वस्त्र पहने था, उसे उस ने उतारा और भिक्षुक को दे दिया !!

महाभारत में एक सुन्दर कथा उल्लेख है—

जिस समय सम्राट् युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ समाप्त किया। और विश्व भर की सम्पदा को दान कर दिया, तब उन्हे कुछ गर्व हुआ और कृष्ण से कहने लगे क महाराज! अब मैं सार्वभौम पद का अधिकारी हुआ।

भगवान् कृष्ण कुछ न कह पाये थे कि इतने में एक अद्भुत मामला हुआ। सबने देखा—एक नौला जिसका आधा शरीर सोने का और आधा साधारण है, किसी तरफ से आकर यज्ञ के पात्रों में लोट रहा है। सब लोग परम आश्चर्य से इस जीव को देखने लगे। तब कृष्ण ने कहा—हे कीटयोनिधारी! तुम कौन हो? यक्ष हो कि पिशाच, देव हो या दानव, सत्य कहो। और किस अभिप्राय से पवित्र यज्ञ पात्रों मे तुम लोट रहे हो।

सब को चकित करता हुआ वह जीव मनुष्य वाणी से बोला—हे महाराज! मै न यक्ष हूँ न देव, मै वास्तव मे क्षुद्र कीट हूँ। बहुत दिन हुए एक महान् पात्र के अवशिष्ट जल मे मुझे स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पवित्र जल से मेरा आधा शरीर भीगा था, उतना ही वह सोने का होगया। मैंने सुना था कि सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर ने महायज्ञ किया है। मन मे विचारा कि चलो मरती जाती दुनिया है—एक वार लोट

कर बाकी का आधा शरीर भी स्वर्ण बना लूं । इसी इरादे से आया था, परन्तु यहां तो ढाक के तीन ही पत्ते दीखे, नाम ही था। मेरा इतने दूर का प्रवास व्यर्थ ही हुआ । मेरा शरीर तो वैसा ही रहा।

बात सुनकर युधिष्ठिर सन्न होगये । उन्होंने उत्सुकता से पूछा कि भाई, वह कौन सा महान् राजा था जिसने भारी यज्ञ किया था। दया कर उसका आख्यान सुनाकर हमारे कौतूहल को दूर करो।

नवले ने शान्त वाणी से कहना शुरू किया—"एक बार देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, बारह वर्ष तक वर्षा न हुई । पशु पक्षी सब मर गये। वृक्ष वनस्पति सब जलकर राख होगई। मनुष्यों के नर कंकालो के ढेर लग गये। वृक्षों की पत्ती, जड़ और छाल तक लोग खा गये। मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। ऐसे समय मे एक छोटे से ग्राम में एक दरिद्र ब्राह्मण परिवार रहता था। उसमें चार आदमी थे। एक ब्राह्मण, दूसरी उसकी स्त्री, तीसरा उस का पुत्र और चौथी पुत्र बधू। इस धर्मात्मा का यह नित्य नियम था कि भोजन से पूर्व वह किसी भी अतिथि को पुकारता था कि कोई भूखा हो तो भोजन करले। यह नियम इसने इन दुर्दिनो मे भी अखण्ड रक्खा। भूख के मारे चारों अधमरे हो गये थे। सप्ताह मे एकाध बार कुछ मिलता, पर नियम से ब्राह्मण किसी अतिथि को पुकारता । इस काल में अतिथि की क्या कमी थी ? कोई न कोई आकर उसका आहार खा जाता था। एक दिन पन्द्रह दिनके पीछे कुछ

साधारण खाद्य द्रव्य मिला। जब चार भाग करके चारों खाने बैठे—तब फिर उसने किसी भूखे को पुकारा और एक बूढ़े ने आकर कहा—मैं भूख से मर रहा हूँ ईश्वर के लिये मुझे भोजन दो। गृहस्थ ने आदर से उसे बुलाया और अपना भाग उसके सामने धर दिया। खा चुकने पर जब उसने कहा—अभी मैं और भूखा हूँ। तब गृहणी ने, और उसके पीछे बारी बारी से पुत्र और पुत्र बधू ने भी अपने अपने भाग दे दिये। इतने पर अतिथि ने तृप्त होकर आशीर्वाद दिया और हाथ धोकर वह अपने रास्ते लगा। वह धर्मात्मा ब्राह्मण परिवार भूख से जर्जरित होकर मृत्यु के मुख में गया। उस अतिथि ने जो अपने झूठे हाथ धोये थे। उस पानी से जो उस महात्मा का घर गीला होगया था उसमें मैं सौभाग्य से लोट लिया था। पर उस पुण्य जल में मेरा आधा ही शरीर भीगा—वह उतना ही स्वर्ण का होगया। अब शेष आधे के स्वर्ण होने की कोई आशा नहीं है। आधा शरीर चर्म का लेकर ही मरना होगा।

क्षुद्र जन्तु की यह गर्वीली कथा सुनकर युधिष्ठिर की गर्दन झुक गई। और अपने तामसिक कर्म तथा गर्व पर लज्जा आई।

श्री रामचन्द्र जी, पिता की आज्ञा मान कर अपना राज्याधिकार त्याग जो वन को गये, उन के इस कार्य को मैं दृढ़तापूर्वक अधर्म घोषित करता हूँ। ज्येष्ट पुत्र होने के कारण श्रीराम का राज्य पर पूर्ण अधिकार था। श्रीराम आदर्श शासक भी होने

योग्य थे। दशरथ जी की आज्ञा अनुचित थी, लोग कहते हैं कि उन्होंने केकई को वर दिया था, वे वचन वद्ध थे। मैं कहता हूँ उन्होंने श्रीराम को वचन दिया कि तुम्हारा राजतिलक होगा और वे केकई की अपेक्षा श्रीराम के प्रति अधिक वचन वद्ध थे। फिर श्रीराम का राज्यारोहण अत्यन्त सुखद, उत्तम, न्यायनीतियुक्त और उचित था। यदि दो वचनों का बराबरी का ही संघर्ष था तो उन्हें राम को दिये वचन को ही पालन करना चाहिये था। मैं कह सकता हूँ कि यह झूठ बात है कि दशरथ ने केवल प्रण के कारण ही राम को वनोवास जाने दिया। वास्तव में असल बात तो यह थी कि वे परले दर्जे के स्त्रैण और दुर्बल हृदय राजा थे। जैसे कि आज भी स्त्रियो के गुलाम बूढ़े रईस देख पड़ते हैं जो पुत्रो पर अत्याचार करते हैं। राम एक असाधारण धैर्यमय महा-पुरुष थे, इसलिये उन्होने वन मे भी चाहे जितने कष्ट भोगे—पर यश का ही सञ्चय किया, परन्तु यदि इतिहास को खोज कर देखा जाय तो दशरथ जैसे स्त्रियों के दास राजाओं की कमी नहीं। पूर्णमल को ऐसे ही पतित पिता ने स्त्री के वशीभूत होकर हाथ पाँव कटवा कर कुएं मे डलवाया था। अशोक जैसे प्रिय दर्शी ने अपने पुत्र कुणाल को ऐसी ही स्त्री की दासता करके आँखे निकाल ली थीं। ऐसे स्त्रैण पुरुषो के बहुत उदाहरण हैं। दशरथ ने न तो अपने राज्य के अधिपति होने के उत्तर दायित्व पर विचार किया और न पिता के उत्तर दायित्व पर। उसने न केवल राम पर, प्रत्युत अपनी ज्येष्ठ पत्नी कौशिल्या पर भी घोर

अन्याय किया। विना ही अपराध एक ज्येष्ठ पत्नी के ज्येष्ठ पुत्र को, जिस का अधिकार था, अधिकार च्युत करके वन भेजना और कनिष्ठा और दुष्टा पत्नी के पुत्र को अनधिकार राज्याधिकार देना, दशरथ के दुर्बल हृदय का खुला उदाहरण है जिसकी अधिक से अधिक निन्दा की जानी चाहिये।

मैं यह कहता हूँ कि राम को अपने ऐसे पिता की ऐसी आज्ञा नहीं पालन करनी चाहिये थी। उन्हे दृढ़ता पूर्वक इन्कार कर देना उचित था। इस स्त्रैण वृद्ध के इस कुकर्म के फल स्वरूप फूलसी सीता को क्या क्या लांच्छनाएं और विपत्तियाँ नहीं सहनी पड़ीं? और राम को जीवन भर किन किन मुसीबतों से न टकराना पड़ा?

लोग चिउंटियों को, कीड़े मकोड़ों को आटे मे गुड़ या चीनी मिला कर जिमाया करते हैं। और इसे धर्म समझते हैं। उधर बड़े बड़े वैज्ञानिक और डाक्टर लोग पृथ्वीभर से रोग कीटाणुओं को, मक्खियों को, मच्छरों को, खटमलों को, पिस्सुओं को जड़मूल से नष्ट करने पर तुले हुए हैं। मैं पूंछता हूँ इन दोनो श्रेणियों मे धर्मात्मा कौन हैं? वे वैज्ञानिक और डाक्टर लोग या चिउंटियो को गुड़ शक्कर खिलाने वाले? बहुधा देखा जाता है कि म्यूनिसिपेल्टियां वन्दरों को, कुत्तों को और चूहों को पकड़ कर नष्ट किया चाहती हैं, परन्तु लोग प्रायः उसका विरोध किया करते हैं। बन्दर हिन्दुओं की दृष्टि में देवता हैं क्योंकि वे सभी अंगद और हनुमान के भतीजे ठहरे, उन्होंने गढ़लङ्का फ़तह

की थी। इसलिये वे मङ्गलवार के दिन वन्दरों को गुड़धानी खिलाना धर्म समझते हैं। इसी प्रकार गौ उन की माता है। उसे वे यदि उन के घर मे कोई असाध्य बीमार हो जाय तो आटे के पिण्ड खिलाते हैं यह उन का धर्म है। कुत्ता भैरों जी की और चूहा गणेश जी की सवारी है, इन सब को जिमाना धर्म है। ख़ास कर काले कुत्ते को दूध पिलाना।

सर्प एक भयानक कीड़ा है। और उसका तुरन्त ही नाश कर देना उचित है, परन्तु हिन्दुओं के लिये एक देवता है, जिसकी पूजा करना और दूध पिलाना धर्म का काम है। अब मैं जानना चाहता हूँ कि विज्ञान, स्वास्थ्य कला, और सामाजिक जीवन के विरोध करने वाले ये नियम क्या बिल्कुल दया के दुरुपयोग के उदाहरण नहीं है ?

मैं एक परिवार को जानता हूँ—इन्हें सनक सवार हुई है कि इनके घर मे गड़ा हुआ धन है—और उसकी रखवाली सर्प देवता कर रहे हैं। मैंने देखा है—घर पुराना है और उसमे सर्प रहता है, वह सांप बहुधा घर मे घूमा करता है, पर ये महाशय उसे मारते नहीं—दूध पिलाते हैं, देखते ही हाथ जोड़ते हैं। इनके यहां एक किरायेदार बुढ़िया रहती थी, दैव योग से एक दिन सर्प से उसका स्पर्श होगया। दूसरे ही दिन उसके पुत्र की सगाई चढ़ गई और यह सर्प देवता का प्रसाद समझा गया।

यही नहीं, और भी बहुत से कीड़े मकोड़े और जीव-जन्तु

इसी भांति पूजे जाते हैं। अब इन धर्म के अन्धों में और वैज्ञानिकों मे एक न एक दिन तो गहरी ठनेगी ही।

मेरे कहने का यह अभिप्राय है कि किसी भी कार्य या विचार की अच्छाई और बुराई उस के सदुपयोग और दुरुपयोग में है। बुराइयों का सदुपयोग धर्म हो सकता है, और भलाइयों का दुरुपयोग अधर्म। परन्तु बुराइयों का दुरुपयोग तो सदैव ही पातक और अधर्म है। यह पातक किस भांति मनुष्यों को गले तक ले डूबा है। इसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

तीसरा अध्याय



अन्धविश्वास और कुसंस्कार

अन्ध विश्वास धर्म की जान है, उस धर्म की जो पाखण्ड की भित्ती पर है, और जिसे आज लोग धर्म मानते हैं। इसी अन्ध विश्वास के आधार पर लोगो ने अत्यन्त भयानक कार्य किये हैं। अन्धविश्वास का दास कभी सत्य के तत्व को तो खोज ही नही पाता। यह बात आम तौर पर प्रसिद्ध है कि धर्म के काम में अक्ल को दखल नहीं है। अन्ध् विश्वासी के कारण धर्म नीति से फ़िसल कर रीति पर आ गिरा है, अब वह रूढ़ियो का दास है। जब मैं बडे २ सुयोग्य विद्वानों को अन्ध विश्वास के आधार पर अवैज्ञानिक और युक्तिहीन बात करते पाता हूँ तो चित्त को क्लेश होता है। कुसंस्कार अन्ध विश्वास का पुत्र है, जो अन्ध विश्वासी हैं—उनमें कुसंस्कार की भावना भी है ही। आज महामना मनीषि-बर मालवीय जैसे प्रकाण्ड राजनीति और समाज तथा अर्थशास्त्र

के दिग्गज मेधावी पुरुष पत्थर की मूर्तियों को परमेश्वर के समान पूजते हैं, यह अन्ध विश्वास जन्य पीढ़ियों के कुसंस्कार का फल है। मुहम्मद अली और डाकटर अन्सारी जैसे दिग्गज वाग्मी और राजनीतिज्ञ, अजमलखां जैसे विचारशील पुरुष भी यह न घोषणा कर सके कि फरिश्तों की गप्पें मानने के योग्य नहीं। वे अन्त तक कुरान शरीफ को ईश्वर वाक्य और फरिश्तों द्वारा मुहम्मद साहेब पर उसकी वही आना मानते रहे हैं। बहिश्त और दोज़ख मे भी उनका पूरा विश्वास है और उनकी आत्मा क़ब्र मे प्रलय तक अपने कर्मों के फल की प्रतीक्षा में चुपचाप पड़ी रहेंगी, यह भी उन्हें विश्वास रहा। आज ईसाई संसार ने पृथ्वी के उच्च कोटि के वैज्ञानिक पैदा किये, पर उनके वे अन्ध विश्वास वैसे ही बने हुए हैं। एक ईसाई लड़के ने एकबार पृथ्वी कैसी है, इसके उत्तर मे कहा था—स्कूल में गोल और गिरजे मे चपटी।

धर्म का आधार वास्तव मे मनुष्य की भलाई बुराई के विचार पर ही है। और वे विचार भिन्न २ देशो के निवासियों की स्थिति के अनुसार अनेक भाँति के होंगे, इसलिये उन विचारों का आधार मूल प्रकृति पर नहीं, प्रत्युत शिक्षा के आधार पर होना चाहिये।

अब मैं यहां योरुप के धर्म विकास और ह्रास पर एक दृष्टि डालूंगा और फिर भारतीय धर्म विकार पर विचार करूंगा।

बहुत प्राचीन मौखिक कथाओ के आधार पर, जिन्हें प्राचीन धार्मिक गण सत्य मानते थे। भूमध्य सागर के द्वीपों और

उसके निकट के देशा को दैवी आश्चर्यों अर्थात् जादूगरनियों, जादूगरो, भूतो, राक्षसो, पंखदार राक्षसो, भयङ्कर रूप धारियो, पङ्खधार नरसिंहो और क्रूरकर्मा दैत्यो से भर दिया था । नीला आकाश स्वर्ग था, जहां जीऊस, देवताओ से घिरा हुआ—मनुष्यों की ही भांति सभा किया करता था ।

जब यूनान मे जागृति पैदा हुई। और उन्हे नवीन बस्तियां बसाने और भौगोलिक अन्वेषण के चाव उत्पन्न हुए। और उन्हो ने कृष्ण सागर और भूमध्य सागर मे खूब चक्कर काटे—तब उन्हे पता लगा कि वे सारी अद्भुत आश्चर्य की कहानियां जो उनकी अति प्रतिष्ठित पुस्तक 'आडिसी' मे वर्णित हैं, वास्तव में कुछ हैं ही नहीं । वे यह भी समझ गये कि आकाश वास्तव में एक धोखा है और वहां कोई भी देवता नहीं रहता । इस प्रकार प्रसिद्ध होमर के सब यूनानी देवता और हीसियड के डोरिक देवता गायब होगये। प्रारम्भ मे जिन्होने साहस पूर्वक जनता मे इस अन्ध विश्वास के विरुद्ध आवाज़ उठाई, उसका खूब कड़ा विरोध किया गया । उन्हें नास्तिक कहा गया और उनमें से अनेकों को प्राण दण्ड और देश निकाला मिला, और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई । इस अन्ध धर्म विश्वास के नाश मे यूनानी तत्त्ववेत्ताओ ने बहुत सहायता दी और कवियो ने उनका खूब करारा अनुमोदन किया । एथेस मे देवी देवताओ के अस्तित्व पर विचार करते करते कुछ ऐसे मनुष्य भी होगये जो संसार को भी मिथ्या और कल्पना मानते थे ।

यूनानी लोग सदैव ही गृह युद्ध में लगे रहे । परन्तु जब

यूनान ने अन्धविश्वास से मुक्त होकर फारिस की आधीनता से इन्कार कर दिया तो बड़ी खलबली फैल गई। क्योंकि उस समय फारिस का साम्राज्य वर्त्तमान समस्त यूरोप के विस्तार से आधा था और वह राज्य भूमध्यसागर, ईजियन सागर, कृष्ण सागर, कैस्पियन सागर, इण्डियन सागर, फारिस सागर और लाल सागर के किनारों तक फैला था। उस राज्य में दुनिया के ६ बड़े नद बहते थे। जिन में से प्रत्येक की लम्बाई एकहज़ार मील से कम न थी। उसके राज्य की भूमि की सतह समुद्र की सतह से १३०० फीट नीचे से लेकर २०००० फुट तक ऊंची थी। इस कारण वह महाराज्य धन धान्य कृषि से भरपूर था। उस का खनिज द्रव्य भी अतुल था। वहां के बादशाह को नीडियन राज्य, असीरियन राज्य और कैलडियन राज्य के विशेषाधिकार विरासत में मिले थे, जिन के इतिहास दो हज़ार वर्ष पीछे तक का ठीक पता देते थे।

इस महाप्रतापी साम्राज्य के सामने यूरोपियन यूनान अति नगण्य था। पर जब जब यूनान से फारिस का युद्ध संघर्ष हुए, तब २ यूनानी सर्वोत्तम सिपाही प्रमाणित हुये। इन युद्धों से उन के हौसले बढ़ गये और उन्हें साम्राज्य के छिद्र मिल गये। और अन्त में यूनानी सेनाएं दुर्धर्ष साहस से फारिस के मध्य-स्थल तक घुस गईं और सफलता पूर्वक निकल भी आईं।

उन्होंने शीघ्र ही फारिस के सम्पन्न नगरों को लूटने का साहस किया जिसे फारिस की सरकार ने रिशवतों के द्वारा शान्त किया।

ऐसे ही समय सिकन्दर का जन्म हुआ। वह एक साधारण राज्य के अधिपति का पुत्र था, पहिले ही धावे मे उसने थीव्स को विजय किया और ६ हज़ार निवासियो को मरवा डाला और ३० हज़ार को गुलाम बना कर बेच डाला। इस से उस की धाक बंध गई। फिर वह एशिया की ओर बढ़ा। उस के साथ ३४ हजार पैदल और ४ हज़ार सवार और ७०) रुपये थे। उसने फारिस की असंख्य सेना पर आक्रमण किया और एशिया-माइनर दख़ल कर लिया, वहाँ का अटूट ख़ज़ाना भी उसके हाथ लगा। फारिस का शाह दारा ६ लाख फौज लेकर सामने आया। पर वह हारा और उस के १ लाख सिपाही खेत रहे। इस प्रकार वह एशिया को फतह कर भूमध्य सागर की ओर बढ़ा, रास्ते के सब राज्य उसने विजय कर लिये। और समुद्र के सम्पूर्णतट स्वाधीन कर लिये। मिश्र भी उसने जय कर लिया। सिकन्दर भी अन्धविश्वास का दास था—यहाँ से वह जूपीटर-एमन के दर्शनों को गया जो वहां से दो सौ मील दूर लीविया के बलुए मैदान में था। वहाँ के देवता ने उसे देवता का पुत्र बताया जिस ने सर्प के वेष मे उसको माता को धोखा दिया था। निर्दोष गर्भ धारण और देवी देवताओं की प्रथा उन दिनो ऐसी प्रबल थी कि जो असाधारण काम करता था, अवतार समझा जाता था। यहाँ तक कि रोम में, कई शताब्दियो तक कोई यह कहने का साहस नही कर सकता था कि उस नगर के स्थापक 'रोम्युलस' की उत्पत्ति मंगल और रीसिलविया के

अचानक संयोग से नहीं हुई है। प्लेटो जैसे तत्वदर्शी के चेले उन सब लोगों से नाराज़ होते थे जो प्लेटों को अपोला देवता के निर्दोष गर्भ से उसकी माता की कुमारी अवस्था मे उत्पन्न होना नहीं स्वीकार करते थे। जब सिकन्दर अपने आज्ञापत्रों और घोषणाओं में अपने को 'सिकन्दर वल्द जूपीटर एमन' लिखकर प्रकाशित करता तो एशिया के निवासियो पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता कि वे उसके विरुद्ध कुछ भी नही कर सकते थे। उसकी माता हंसी में बहुधा कहा करती थी कि सिकन्दर मुझे जूपीटर की जोरू न बनाया करे तो अच्छा है।

परन्तु सिकन्दर ने अपनी अल्पावस्था मे जो कार्य किये वे कम आश्चर्यजनक न थे। हेलेस्पोट को पार करना, ग्रेनीकस ज़बर्दस्ती ले लेना, विजित ऐशिया माइनर का राजनैतिक प्रबन्ध करते हुए शीतकाल व्यतीत करना, दक्षिण और केन्द्रस्थ भाग को सेना का भूमध्य सागर के किनारे किनारे सफर करना। टायर के घेरे मे बहुत सी शिल्प सम्बन्धी कठिनाइयो का निवारण करना, गाजानगर को तोपों से उड़ा देना, फारिस का यूनान से पृथक् हो जाना, भूमध्य सागर से फारिस की जल सेना को बिल्कुल निकाल देना, फारिस के उन उद्योगों को रोक दिया जाना, जिन से वह एथेन्स निवासियों और स्पार्टा के निवासियों से मिल कर षड्यन्त्र रचता था—या रिशवत देता था, मिश्र को आधीन कर लेना, कृष्ण सागर और लाल सागर की सम्पूर्ण सेनाओं का मेसोपोटानिया के रेतीले मैदानों की ओर एकाभिमुख

होना, थप्लेक्स के टूटे पुल पर से लम्बे बैतों से पूर्ण किनारे वाली फ्रात नदी को ससैन्य पार कर लेना, हिगरिस नदी को पार करना, अरबेला के बड़े और महत्वपूर्ण युद्ध और पहिली रात मे युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण करना, फिर ठीक युद्ध के समय मे तिरछी चाल चलना, और शत्रु के मध्य भाग को छेद जाना, दारा को विजय करना—ये सब ऐसे अलौकिक काम थे कि उस समय तक किसी सैनिक ने नहीं किये थे।

इन उदाहरणों से आप देखेंगे कि यूनान को अन्धविश्वासों के दूर होने पर बहुत सी चुस्ती प्राप्त हुई। इस बड़े विजेता के साथ यूनानियो ने डैन्यूब से गङ्गा तक का सफर किया, कृष्ण सागर के उस पार वाले देशों की उत्तरी वायु के झोके खाये। मिश्र की 'वादे समूम' के थपेड़े सहे, मिश्र के वे मीमार देखे जो दो हजार वर्षों से खड़े थे। लक्सर के गूढ़ाक्षर वलित स्तम्भ और भेदपूर्ण स्त्रीमुख और सिंह शरीर दानवों की कुञ्ज देखी और उन महाराजों की विशालाकार मूर्तियां भी देखीं जिन्होने संसार के आदि भाग मे राज्य किया था। बैबलीन का वह नगर कोट भी तब तक शेष था जिस का घेरा ६० मील से अधिक था। और तीन शताब्दियों से विदेशियो के उपद्रव सहकर भी अभी तक ८० फीट से अधिक ऊंचा था। उन्होंने वह आकाशचुम्बी 'बेल' के मन्दिर का भग्न अंश भी देखा था जिसकी चोटी पर वेधशाला थी। जहां से इन्द्रजाली कैलडियन ज्योतिषी रात को नक्षत्रों से बातचीत किया करता था। उन्होंने आकाश में लटकते

हुए बाग़ भी देखे थे और उस पानी की कल का भी टूटा भाग देखा था जो नदी से उन वृक्षों तक पानी पहुंचाता था । उन्होंने उस असाधारण कृत्रिम झील को भी देखा जिसमें आरमिनिया के पहाड़ों का वर्फ पिघल पिघल कर आता था, और फ्रात नदी के वंधान से रुककर सारे शहर में बहता था ।

इन सब दिग्दर्शनों ने उन मेधावी पुरुषों के मस्तिष्क में वह शक्ति उत्पन्न की जिसके कारण इन्होंने आगे चलकर अलग्ज़ेंण्ड्रिया मे गणित और व्यवहारिक विद्या की पाठशालाऐं खोलीं। और यूनान ज्ञान का केन्द्र होगया।

सिकन्दर के इस युद्ध संघर्ष में एक बात और भी थी, फारिस वाले सदैव ही यूनानियों के मूर्ति पूजनकों को आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे, और जब भी उन्हें आक्रमण करना होता था— वे उनका निरादर करने मे नहीं चूकते थे । फारिस मे भी अनेक प्राचीन राज्यों की भाँति अनेक धर्म प्रचलित हुए, पहिले वहाँ जरदुस्त का चलाया हुआ अद्वैतवाद रहा, पीछे वे द्वैतवादी हुए, फिर मैजियन धर्म चला, सिकन्दर के आक्रमण के समय फारिस एक ईश्वर ही को सर्वव्यापी शक्तिदाता मानता था।

यूनान मे तत्त्व ज्ञान के आधार पर नीच अश्लील चरित्र आलम्पियन देवताओं की मूर्तियां पूजी जाने लगी थीं। मैजियन धर्म मे, अग्नि, ईश्वर का सर्वोत्तम प्रतिनिधि समझी गई। और वह सदैव खुले मैदानो मे जलती रहती थी। सिकन्दर की मृत्यु पर अरस्तु का तत्वज्ञान जो आनुमानिक न्याय के आधार पर था

शक्तिमान् हुआ और उस से बहुत सी वैज्ञानिक उन्नतियाँ हुईं। यूनान में—इतिहास, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, समाज शास्त्र और ज्योतिष मे खूब अन्वेषण हुआ।

ईसाई धर्म रोमन राज्य की दी हुई वस्तु है। भूमध्य सागर के इर्द गिर्द की सब स्वतन्त्र जातियां उस केन्द्रस्थल राज्य के आधीन हो चुकी थीं। वह विजित जातियों की मूर्त्ति पूजा को घृणा सूचक सहन शीलता से देखता रहा। पर देवताओं की भावना मे एक विचित्रता रही, पूर्वी जगत् में देवता स्वर्ग से उतरते थे और मानव शरीर धारण करते थे। पश्चिमी जगत् मे वे पृथ्वी से ऊपर चढ़ते थे और देवताओं से जा मिलते थे। पुरानी मौखिक कथाओं के आधार पर यहूदियों का ऐसा विश्वास था कि उन्हीं की जाति मे एक बचाने वाला पैदा होगा। ईसाके शिष्यों ने ईसा ही को मसीहा बताया, परन्तु पुरोहितों ने उसका विरोध किया। क्योंकि वह उनके स्वार्थों के विपरीत बोलता था। अन्त मे रोमन गवर्नर ने उसे सूली पर चढ़ा कर मरवा दिया। परन्तु उसके मानवीय भ्रात भाव के सिद्धान्त सर्व प्रिय होते ही गये। शीघ्र ही उसके शिष्यों की एक जाति बन गई। और चर्च की स्थापना हुई। यह धर्म धीरे धीरे साईप्रस, यूनान और इटली तक पहुँच कर फ्रान्स और इंग्लैण्ड तक पहुंच गया। बहुत समय तक यह धर्म तीन बातों का प्रचार करता रहा—१. ईश्वर भक्ति, २. पवित्र जीवन, ३. परोपकार।

रोमन सम्राटों ने इस धर्म को दबाने के लिए बड़े बड़े

अत्याचार किये। उनका वर्णन हम ने अन्यत्र किया है। यहां हम इतना बता देना चाहते हैं कि मसीह के बाद भी ऐसे धर्म ग्रन्थों का निर्माण होता रहा। जिन में भूत प्रेत आदि का ज़िक्र था। कुछ लोगों को जादूगर होने के सन्देह में ज़िन्दा जला दिया गया या फांसी देदी गई। उस समय तक भी ईसाई लोग मूर्त्ति की पूजा ठाट बाट से करते थे, धीरे धीरे पुजारियों के अधिकार बढ़ने लगे थे। उनकी मृत्यु पर उनकी समाधि पर गिर्जा बनाये जाते थे। व्रत करना शैतान को भगाने का और अविवाहित रहना नेकी का ठीक उपाय समझा गया था। क़ब्रों की यात्राएं होतीं थीं, पवित्र जल की महिमा बढ़ गई थी। पुजारी लोग भी देवताओ की भांति पूजे जाते थे। मृतात्माएं मन्त्रों के बल से बुलाई जाती थी और वे संसार भर की खबरें जानतीं थीं। साधुओं की क़ब्रों की मिट्टी और उनके वस्त्र तक पुजने लगे थे। पुरोहितों का पाखण्ड दिन दिन बढ़ने लगा था, वे धूम धाम से गाजे बाजे के साथ सवारी निकलवाते, धार्मिक अवसरों पर कोड़े लगवाते, सिर मुण्डाते, मठो मे रहते और मिथ्या विश्वासों को जन साधारण में उत्पन्न करते थे। इन मूर्त्ति पूजकों में बहुत से प्राचीन उच्चवंश के लोग सम्मिलित थे। उनका दावा था कि मनुष्य के जानने योग्य सब कुछ उनकी धर्म पुस्तकों में हैं।

धीरे धीरे इन में दूसरा दल उत्पन्न हुआ और वह मानवी बुद्धि पर धर्म की बातो को तोलने लगा। दोनों दलों में पूरी मुठ-भेड़ हुई। परन्तु अपने पादरियों की शक्ति इतनी चढ़ गई थी

कि उनका धर्म राजनैतिक धर्म हो गया था और उन्हे राज्य की सहायताएं प्राप्त हो गई थीं। इन दिनों पशुओ के बलिदान भी होते थे।

उन दिनों सिकन्दरिया में हिमैशिया एक प्रसिद्ध तात्त्विक स्त्री रहती थी। उसने अफलातून और अरस्तू के सिद्धान्तो की बड़ी गहन विवेचना की थी और रेखागणित में बड़ी योग्यता प्राप्त की थी—उसके घर के सामने उसकी व्याख्या सुनने को ऐलेग्जेन्ड्रिया के अनेक धनीमानी सदैव ही बसे रहते थे। उस विदुषी को साइरिल नामक पादरी ने अपने मठवासी लोगों की सहायता से सड़क पर पकड़ लिया, उसे नंगी करके वे गिरजे में ले गये और वहाँ वह पीरदी रीडर के लठ से वह मार डाली गई। और उसकी लाश के टुकड़े २ करके उसका मांस सीपियों से खुरोचकर आग मे डाल दिया गया। इस भयानक हत्या का उस पादरी से कोई जवाब नहीं तलब किया गया।

इस घटना के बाद यूनान का रहा सहा तत्त्वज्ञान भी सदा को सो गया। और यह घोषणा कर दी गई कि प्रत्येक मनुष्य वैसे ही विचार रक्खे जैसे सन् ४१४ मे पादरी ने वर्णन किये हैं।

इसी समय एक अंग्रेज सन्त पश्चिमी योरोप और उत्तरी अफ्रीका मे घूम रहा था। उसका नाम पिलैजियस था, उसने प्रचार किया कि मनुष्य की मृत्यु आदम के पाप के कारण ही नहीं होती जैसा कि बाइविल में लिखा है—प्रत्युत वह अवश्य

भावी और प्राकृतिक है। अगर कोई पाप न करे तो भी उसे मरना पड़ेगा। वह यह भी कहता था कि मनुष्य स्वयं ही अपने पाप पुण्य का ज़िम्मेदार है उसका पुत्र नहीं।

उसका यह कहना अपराध ठहराया गया और उसे उसका सर्वस्व छीन कर देश निकाला दे दिया गया। परन्तु लोगों ने इस प्रश्न पर विचार करना शुरू कर दिया कि मृत्यु इस संसार में आदम के पतन से पहिले थी या नहीं। इसी बीच में प्रसिद्ध साधु अगस्टाइन उत्पन्न हुआ और उसके धर्म और विज्ञान में ऐसा विरोध उत्पन्न किया कि लगभग १५०० वर्ष तक धार्मिक लोग उसके वचनों पर श्रद्धा करते रहे। अब ईसाई पादरियों की धन समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। क्योंकि राजकीय आय में से एक बंधी रकम धर्म कार्यों के लिये मिलती रही थी।

अब ईसाइयों के ३ बड़े २ केन्द्र थे—रोम, सिकन्दरिया और कुस्तुन्तुनिया। तीनों ही केन्द्रों के विषय अपना सर्व श्रेष्ठ पद प्रमाणित करते थे। इस समय ईसाइयों के स्वर्ग की खूब चर्चा थी। वह स्वर्ग प्राचीन ओलम्बियन पहाड़ था, वहाँ एक श्वेत सिंहासन पर ईश्वर बैठता था और उसकी दाहिनी ओर उसका पुत्र मसीह और उसके वाद खूब सजीधजी कुमारी मरियम। बाईं ओर पवित्रात्माऐं होती थीं। चारों ओर बहुत से फरिश्ते बीणा लिये बैठते थे। सामने असंख्य मेज रहती थीं जिनपर अच्छी आत्माऐं सदा मौज उड़ाया करती थी।

इस वर्णन में सैकड़ो वर्ष तक किसी को सन्देह न हुआ।

इन्हीं दिनो कुस्तुन्तुनिया के सम्राट ने एक विशप को कुस्तुन्तुनिया के विषय का पद दिया। इसका नाम नेस्टर था। यह सन् ४२७ की बात है, उसने साहस पूर्वक मनुष्याकृति ईश्वर को मानने से इन्कार कर दिया—और अविनाशी निराकार ईश्वर का प्रचार करना प्रारम्भ किया। वह अरस्तू के सिद्धान्तों को अध्ययन कर चुका था। सिकन्दरिया के साइरससे उसका झगड़ा होगया, यह वही साइरस था जिसने हियेशिया को मार डाला था। परन्तु नेस्टर ने उसकी परवाह न की और वह धडल्ले से निराकार ईश्वर की सिद्धि पर व्याख्यान देने लगा। अन्त मे कुस्तुन्तुनिया मे विद्रोह फैल गया। यह इतना बढ़ा कि सम्राट् को दखल देना पड़ा। उसने एक सभा बुलाई। जिसमें साइरस जा धमका, उसके साथ बहुत से गुण्डे थे—और उसने घूस देकर राज्य कर्मचारियो को मिला लिया था। यहाँ तक सम्राट् की बहिन भी उसी के पक्ष में थी। वह स्वयं ही सभापति बन गया और सीरिया के धर्माध्यक्षो के पहुँचने के पूर्व ही उसने राजाज्ञा सुना दी। नेस्टर का उत्तर सुनने से पूर्व ही उसे दण्ड दे दिया गया। सीरिया के धर्माध्यक्षो ने बहुत विरोध किया। यहाँ दंगा भी होगया और बहुत कुछ रक्तपात हुआ। अन्त में नेस्टर को देश निकाला दिया गया, और उसे जीवन भर कष्ट दिया गया। उसके मरने पर यह मशहूर किया गया कि उसकी जीभ में कीड़े पड़ गये थे। चूंकि उसने ईश्वर की निन्दा की थी।

सिन्ध नदी को पार करके सिकन्दर का भारत में घुस आना

धार्मिक दृष्टि से दोनों प्राचीन जातियों के विचार विनिमय का एक ज़बर्दस्त कारण होगया। भारत ने भयानक कष्ट देने वाले देवताओं को उन लोगों से पहचाना और तन्त्र ग्रन्थों की सृष्टि की आगे चलकर तान्त्रिकों के उपद्रव देश भर में फैल गये। प्राचीन भारतीय देवताओं और आत्मवाद की छाया यूनान में अरस्तू लेगया। जिससे यूनान में तत्त्वदर्शन की बड़ी भारी उन्नति हुई और रोमन सभ्यता मे भी उसका बड़ा भारी स्थान रहा।

परन्तु भारतवर्ष मे तान्त्रिक लोगों ने अन्ध विश्वास की जड़ें पाताल तक फैला दीं। कापालिक लोग उस समय दर बदर फिरा करते थे, और मरघट मे वे कुत्सित जीवन व्यतीत करते तथा उन्हे लोग अलौकिक शक्ति सम्पन्न आदमी समझते थे। पृथ्वीराज रासों में ऐसे तान्त्रिकों का और उनके दर बदर फिरने का बहुत ही ज़िक्र है।

परन्तु अन्धविश्वासों को तो सब से बड़ा सहारा योग के चमत्कार से मिला। आज भी लाखों मनुष्य योग की विभूतियो पर भारी श्रद्धा करते हैं। मै दृढ़ता पूर्वक कहता हूं कि योग की विभूतियां और सिद्धियां बिलकुल असाध्य और अव्यवहार्य हैं। और मै विश्वास नहीं करता कि कभी भी पृथ्वी पर कोई ऐसा मनुष्य हुआ होगा कि जो उन विभूतियो से जानकार होगा। मनुष्य का मच्छर होजाना, या पर्वताकार हो जाना, लोप हो जाना, आकाश मे उड़ना, दूसरी योनियों मे चला जाना, मर कर भी जी उठना बिलकुल गप्प, झूंठ, असम्भव और ढकोसला हैं।

यहाँ योगशास्त्र पर मैं और भी गम्भीर दृष्टि डालूंगा। प्रथमतो यह विचारना चाहिये कि योगशास्त्र का निर्माता पतञ्जलि ऋषि कोई अति प्रसिद्ध बड़ा भारी ऋषि नहीं। उसका जन्म पाणिनी के पीछे का है क्योंकि उसने पाणिनी की अष्टाध्यायी पर भाष्य किया है। पाणिनी का जन्म काल मसीह से ३०० वर्ष पूर्व के लगभग है। यह वह समय था जब देश के धर्म में अन्धकार की भावना फैल गई थी। और ब्राह्मणों का देश मे जोर था, बड़े बड़े यज्ञ होते थे। अनुष्ठानों और क्रियाओं का बड़ा महत्त्व था। यूनानी लोगों का भारत में नया संस्पर्श हुआ था। और उनसे भारतीयों ने अद्भुत अद्भुत देवताओ, घटनाओं और आश्चर्य की बाते सुनी थी। पतञ्जलि ने इन सब को हृदयङ्गम किया और योग-दर्शन लिखा। पतञ्जलि स्वयं योग का ज्ञाता था और उसे वे सारी सिद्धियाँ आती थी, इसका कुछ भी प्रमाण देखने को नहीं मिलता। न इस बात का ही कोई प्रमाण हमें देखने को मिलता है कि पतञ्जलि से पूर्व किसी भी ऋषि ने इस प्रकार की सिद्धियों की चर्चा की हो, या उन्हे सम्भव माना हो। वास्तव मे वह एक रहस्य पूर्ण ढङ्ग से लिखी हुई एक और ही उद्देश्य की पूर्ति की पुस्तक है। उस का उद्देश्य केवल सांख्य के बुद्धिगम्य विषयों को अनुभविक ढङ्ग से व्यक्त करना था। जो चमत्कारिक तो था, व्यवहारिक नहीं।

इस योग-दर्शन के निर्माण के बाद पैशाची भाषा के कुछ ग्रन्थों में, जिनका मूल उद्गम भी मध्य ऐशिया की जातियों के

संसर्ग से था बड़ा प्रभाव पड़ा। पुराणों में जो असंख्य बुद्धि विपरीत बातें हमें देखने को मिलती हैं वे सब इसी की बदौलत गढ़ी गई हैं। और योग—तन्त्र मंत्र, जादू टोने, टोटके की बदौलत आज भी लाखों लोग भेट भर रहे हैं। दो चार उदाहरण देकर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

एक बार मैं रुग्ण हो गया था। रक्त की बहुत कमी हो गई थी और अनिन्द्र रोग भी था। उन्हीं दिनों एक योगीराज दिल्ली आए हुए थे। उनकी बड़ी धूम थी। वे सूर्य पर बदली ला देते हैं, अदृश्य हो जाते हैं, और देखते देखते बालरूप धारण कर लेते हैं तथा और भी अद्भुत क्रियाऐं जानते हैं, यह बात अख़बारों तक मे छप गई थी। मेरे एक मित्र उन्हे मेरे पास पकड़ लाए—उनका कहना था कि योगिराज दृष्टिमात्र से ही उन्हें आरोग्य कर देंगे। नगर के दो प्रतिष्ठित बैरिस्टर और एक डाक्टर साहेब सदैव ही योगिराज के साथ घूमते थे। योगिराज को देखते ही मैं तुरन्त पहचान गया। वह महाविद्यालय ज्वालापुर का एक चलता पुर्जा विद्यार्थी था, परन्तु मैंने ऐसा भाव दिखाया मानों मैंने उन्हें बिल्कुल नहीं पहिचाना। वे बड़ी गम्भीरता से बैठ गये। मूछें मुण्डी हुई, घूघर वाले बाल लहराते हुए, मांग निकली हुई। बढ़िया तंज़ेब का कुरता और पीतल की पच्चीकारी के काम की खड़ाऊं पहिने, रेशमी धोती लपेटे हुए पान कचरते हुए कुर्सी पर डट गये।

मैंने कहा—महाराज, कहाँ से पधारना हुआ।

"हम मान सरोवर में ध्यानस्थ थे।"

"कितने वर्षों से ?"

"बहुत काल से, लगभग २५ वर्ष हुआ होगा, अधिक भी हो सकता है !"

"आपकी आयु क्या है ?"

"आप क्या अनुमान करते हैं ?"

"यही २०, २५ वर्ष।"

योगीराज ज़ोर से हंसकर बोले—हम १०० के पेटे मे हैं। परन्तु अभी तो हमारी किशोरावस्था ही है। पूर्ण युवा नही हुए हैं।

मैंने मन की हंसी दबा कर कहा—

"बालों में तेल कौनसा डालते हैं ?"

"हमने पचासों वर्षों से तेल नही डाला। बाल स्वयं शरीर मे चिकनाई खींच लेते हैं।"

इस के बाद उन्होंने अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी में बीच बीच मे एकाध टुकड़ा श्लोक बोलते हुए योग की व्याख्या और चमत्कार कैसे प्राप्त किये जाते हैं इस का विवेचन करना शुरू किया। अन्त में दृष्टिमात्र से हमारा रोग अच्छा कर देने का वचन भी दिया। परन्तु दृष्टि में बल लाने की साधना करनी होगी। क्योंकि कई सिद्धियां दिखाने के कारण उनका बल खर्च हो गया था।

बहुत सी बात सुन कर अन्त में मैंने हंस कर कहा—खैर यह तो हुआ। अब आप यह तो कहिये आपकी माता जी प्रसन्न हैं? और बहिनों का विवाह हुआ या नहीं?

योगीराज एकदम आकाश से गिरे। बोले, क्या आपका हमारा कुछ और भी परिचय है।

मैंने कहा—यार, क्यों पाखण्ड करते हो, अभी पं० भीमसेन जी के डण्डो के निशान पीठ पर होंगे। सुनते ही हंस पड़े, लिपट गये। और सब रोना रोया। माता मर गई। एक बहिन विवाह दी गई। दूसरी के विवाह की चिन्ता है। रुपये की फिक्र है। आदि २।

अन्धविश्वास के द्वारा बच्चों मे भूत प्रेत के कुसंस्कार भी जमा दिये जाते हैं। और वे सदैव डरपोक बने रहते हैं। एक वीर जो तोपों की गर्जना और बरसती गोलियों में निर्भय खड़े रहते थे और सेना के उच्च पदस्थ थे, रात को पेशाब करने जब उठते तो किसी सेवक को जगा कर साथ ले लेते थे।

एक पागल हमें देखने को मिला जो मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। यह व्यक्ति एक बार किसी मन्त्र को जगाने मरघट में गया था। वहाँ धरती मे एक कील ठोकी। दैव योग से वह कील उस के अंगरखे के पल्ले के साथ गड़ गई थी। जब वह उठकर चलने लगा। पल्ला कील मे अटक ही रहा था। बस चिल्ला उठे, समझे भूत ने पकड़ लिया। बेतहाशा भागे। तब से मस्तिष्क मे ऐसा विकार आया कि चुप हो गये। २५ वर्ष तक

उसी दशा मे रह कर मर गये। हमने उन्हें देखा था। यह दशा थी—जहाँ खड़ा करदो जड़वत् खड़े रहते थे। और जिधर उनका कोई अङ्ग करदो वैसा ही बना रहता था। बहुधा लोग उनके मुंह में लड्डू दे देते थे। वह घन्टो वैसा ही धरा रहता था। लोग उन्हें सिद्ध समझ कर पूजा करते थे।

अन्धविश्वास और कुसंस्कारो ने ही करोड़ों हिन्दुओ को मूर्त्ति पूजा के कुकर्म मे फांस रक्खा है। पढ़ लिखकर भी, समझदार होकर भी वे उस से विमुख नही हो सकते। बहुत लोग स्वप्नों पर बड़ा विचार किया करते हैं। अमुक स्वप्न देखने से अमुक फल होगा। एक वार राजा जमोरिन ने एक स्वप्न देखा। कि चन्द्रमा के दो टुकड़े हो गये हैं—राजा ने उसका अर्थ दर्बारियो से पूंछा, परन्तु वे ठीक ठीक उत्तर न दे सके। उन्ही दिनों कोई अरब के व्यापारी वहाँ आये थे। राजा ने उनसे भी स्वप्न का हाल कहा—उसने अंट संट बता दिया। राजा मुसलमान हो गया। और उसके वंशधर आज भी मोपला हैं।

स्वप्नों की चर्चा महाभारत, भागवत, पुराण आदि में बहुत हैं। कुछ ऐसी कथाएं भी हैं कि स्वप्न में देखी स्त्रियों से और स्थानो से जागृत होकर भी कुछ राजा मिल सके हैं। वीर विक्रमादित्य की कहानियो में इस प्रकार की वातों का खूब उल्लेख है। फलतः पढ़ने वालो पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

शकुन भी अन्धविश्वास की खास चीज है। मुगल बादशाहों तक को शकुन देखने का खब्त सवार था। वे बिना

शकुन मुहुर्त दिखाये कोई काम करते ही न थे।

बिल्ली का रास्ता काट जाना, कौवे का बोलना, काने आदमी का सामने मिलना, गीदड़ का रोना, खाली घड़े लेकर किसी स्त्री का सामने आना, किसी का छींकना ये सब अशुभ बातें मानी जाती हैं। कुछ लोग तो इतने अन्धविश्वासी होते है कि वे इस क़दर भयभीत हो जाते हैं कि बहुधा उनके प्राण निकल जाते हैं।

इसी प्रकार की एक मज़ेदार घटना है कि किसी देहाती लाला को किसी देहाती ज्योतिषी ने कह दिया कि जिस दिन तुम्हारे मुँह से ख़ून निकलेगा तुम मर जाओगे। एक दिन लाल रंग का डोरा उसके मुंह में कहीं से लिपट गया। उसे देखते ही वह भयभीत होकर समझ बैठा कि मृत्यु आ गई। वह दूकान बन्द करके घर आया। घर दूर था, और गर्मी की ऋतु थी, पसीने से तर होगया। स्त्री से कहा—जल्द खाट बिछादे और लड़के को स्कूल से बुलाले—मेरा अख़ीर वक्त आगया है। स्त्री ने शरीर देखा ठण्डा बर्फ हो रहा था—उसने रोकर कहा—अरे तुम तो बिलकुल ठण्ढे हो रहे हो। अब उसे और भी मृत्यु पर विश्वास होगया। वह जल्द जल्द सांस लेने और लेन देन का हिसाब बताने लगा।

लड़का समझदार था—स्कूल से आया और देखकर बोला—पिताजी, आपमे मरने के कोई लक्षण नही। आप कैसे मरते हैं। उसने कहा—गधे, हमारे मुंह से आज ख़ून निकला था

नहीं ? लड़के ने देखकर कहा—कहाँ ? यह तो लाल धागा दाँतों से लिपट रहा है।

यह सुनते ही लाला खुशी से उछल पडे। बेटे को छाती से लगा लिया और कहा—बस इसी ने इस वक्त जान बचाई है। इसके बाद खाना खाकर फिर दूकान पर जा डटे।

इस अन्ध विश्वास के चक्कर मे फंसकर हमने बहुत कष्ट झेले हैं। परन्तु कही भी कुछ परिणाम देखने को नही मिला। एक बार एक व्यक्ति के कहने से २१ दिन अन्न जल त्याग अखंड जप दुर्गा का किया। उस व्यक्ति ने कहा था, साक्षात् दुर्गा दर्शन देगी। पर दुर्गा की दासी ने भी दर्शन नही दिये। एक बार कण्ठ तक जल मे कठोर शीत ऋतु मे लगातार ४।५ घण्टे प्रतिदिन ३ मास तक खड़े रहकर मृत्युजय और गायत्री का जप किया, परन्तु हमे उससे कुछ भी सिद्धि न प्राप्त हुई। और भी बहुत से कष्ट साध्य और अद्भुत अनुष्ठान हमने किये। और हम दावे से कह सकते हैं, ये सभी झूठे और पाखण्ड पूर्ण निकले।

हाल ही मे मेरे एक मित्र हैदराबाद दक्षिण से आये। दो चार दिन बाद ही उनके घर से जल्द आने का तार आ गया। वे अपने नवजात शिशु को रोगी छोड़ आये थे। उसी की चिन्ता ने उन्हें धर घेरा। बारम्बार उसी बच्चे की अशुभ कल्पना उनके मन में उठने लगी। तार देकर पूंछा कि क्या हाल है, पर जवाब का सब्र न था, एक नामी ज्योतिषी के पास गए, ग्रह दशा दिखाई और उन्होंने रंग ढंग देख पितलाया सा मुह बनाकर कहा—बच्चे पर

घोर संकट है, छाती में क़फ का रोग है, १३ तारीख़ तक बुरी दशा है। वचना कठिन है। उस कुसमाचार को संशोधन करके उन्होंने मुझे सुनाया कि उसे डबल निमोनिया हो गया है। विवश उन्हें विदा किया गया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ख़त लिखा— वच्चे को देखने की आशा न थी, भूखा प्यासा स्टेशन पर उतरा, पागल की भाँति तांगे में वैठकर घर पहुँचा, देखता क्या हूँ छोटे साहब माता की छाती से लगे दूध पी रहे हैं। देखते ही दोनों हाथ उठाकर हंस पड़े। अब दिलको तसल्ली हुई। चले आने का अफ़सोस है।

कहिये ! इस अन्ध विश्वास का और कुसंस्कार का भी कुछ ठिकाना है। सारी पृथ्वी की जातियों मे एक से एक वढ़कर कुसंस्कार फैले हुये हैं। और विज्ञान अभी तक उन्हे दूर करने मे बिल्कुल असमर्थ है।

चौथा अध्याय

अत्याचार

अन्धविश्वास के साथ क्रोध का खूब दोस्ताना है। क्योंकि जो आदमी अन्धविश्वासी हैं उनके पास युक्तियाँ नहीं। वे अपनी दुर्बलता को क्रोध में छिपाते हैं। उमर जो मुसलमानों का तीसरा खलीफा था एक आदर्श अन्धविश्वासी मुसलमान था। जो कोई भी उस से उसके धर्म में तर्क करता—उसका जवाब वह तलवार से देता था। वह एक भारी डीलडौल का आदमी था। उसका शरीर काला, आँखें लाल, और सिर बिलकुल सफाचट था। वह सदा एक चमड़े का कोड़ा अपने पास रखता था। और उससे बदमाशों और मुसलमानी धर्म की निन्दा करने वाले कवियों की मरम्मत किया करता था। एक बार वह जब युद्ध करने को ईसाइयों के किसी नगर पर गया था तो ईसाइयों ने उससे कुछ धर्म सम्बन्धी प्रश्न पूंछे इस पर उसने तलवार निकाल कर कहा—मेरा उत्तर सिर्फ यह तलवार है।

धार्मिक अत्याचारों को मेरे विचार में ईसाइयों ने सब से अधिक धैर्य और साहस के सहन किया है। ईसाइयों पर अत्याचार के पहाड़ टूट पड़े थे। सर्व प्रथम तो ईसा की मृत्यु के बाद यहूदियों ने और नीरो बादशाह ने उन्हे बड़े बड़े कष्ट दिये। इसके बाद जब प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय चला—तब पोपों ने उन्हे भयानक कष्ट दिये। यहाँ पाठको की जानकारी के लिये हम उन अत्याचारो का संक्षेप मे दिग्दर्शन करते हैं।

ईसा मसीह के चरणों में आज आधी दुनिया है। इन के समय मे बड़े विद्वत्तापूर्ण तात्त्विक लेखक नहीं थे। मसीह के पास न तलवार थी, न विद्या थी, केवल एक आत्मबल था। उनका उपदेश प्रेम का था। वे कहते थे कि एक परमेश्वर ही सर्वोपरि है। उस ज़माने में मूर्त्ति पूजा का प्राबल्य था। पर मसीह ने शान्ति।पूर्वक प्रचार किया कि ये पत्थर की प्रतिमाएं कदापि ईश्वर नहीं हैं। राजा और प्रजा के विरुद्ध यह आवाज़ थी। हजारों वर्ष के अन्धविश्वास के विरुद्ध यह घोषणा थी। इसके बदले में मसीह को अनेक कष्ट दिये गये, उसे पापी और विधर्मी कह तिरस्कृत किया गया। पर वह शान्ति, धर्म और सत्य की मूर्त्ति था। उसने अलौकिक धैर्य के साथ अत्याचार का मुकाबला किया। उसे तख्तो पर लटका कर उसके हाथ। पावों मे लोहे के कीले ठोक दिये गये और वह भगवान् से उन अत्याचारियों के लिये क्षमा माँगता हुआ शान्ति पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसने केवल ढाई वर्ष उपदेश किया।

मसीह के बाद पावल ने ईसाई मत का प्रचार किया। उसे भी आश्चर्यजनक सङ्कट सहने पढे। पाँच बार यहूदियों की रीति से और तीन बार रोमियों की रीति से उसने कोड़े खाये। एक बार पत्थर वाह किया गया और चार बार उसकी नाव मारी गई। एक रात दिन वह समुद्र मे रहा और अन्त में मसीही धर्म पर विश्वास के अपराध पर मारा गया। इस धीरजवान् पुरुप ने मसीही धर्म का प्रचार बड़ी निर्भीकता और अदम्य उत्साह से किया और बड़े धैर्य और सहिप्णुता से सब कष्टों का सामना किया। उसने ऐशिया, यूनान, फिलिप्पी, थिसलिनी, विरिथ, इकिस और मिलित नगरों मे प्रचार किया और बहुत से शिष्य बनाये। अन्त में जेरूसलेम मे फिर पकड़ा गया और दो वर्ष कैसरिया नगर में कैदी रख कर रोम को भेजा गया।

उन दिनों रोम नगर संसार के बढ़े चढ़े नगरो में एक था। संसार भर के भाषा भाषी व्यापारी रोम के बाजारों मे चलते थे। मानो वह एक स्वयं छोटा सा जगत् था। इसका विस्तार बहुत अधिक था और यह सात पहाड़ों पर बसा हुआ था। उस मे ३० लाख आदमी रहते थे। एक हजार सात सौ अस्सी सरकारी इमारतें थीं। देवताओ के चार सौ से अधिक मन्दिर थे। जिनमे केपिटोल नामक यूपिटर देवता का मन्दिर जो कपिटोली नामक पहाड़ी पर बना था, बड़ा विशाल था और इसके ऐश्वर्य की बडी प्रसिद्धि थी। उसकी लागत एक करोड़ रुपये कूते जाते थे। रोम के बादशाह ने ऐसी इस महानगरी में भयङ्कर

आग लगा दी और दोष मसीही प्रचारकों पर लगा दिया, निदान प्रजा ने उनका बड़ी निर्दयता से वध करना शुरू किया इसी धर्म युद्ध में पावल के प्राण गये।

याकूब मसीह का भाई था और जेरूसलम में मसीही धर्म का प्रचारक था। रोम के उपद्रव के समय ही उस पर कोप पड़ा। वह जब न्यायालय मे पेश किया गया तो उसने वीरतापूर्वक कहा—'यीसूख्रीष्ट परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है और आकाश के मेघों पर चढ़कर फिर आवेगा।' इस बात पर उसे पत्थरों से हलाल कर डालने का दण्ड दिया गया। पत्थरो की झड़ी जब उस पर पड़ने लगी तब उसने तनिक अवसर पाकर पुकारकर कहा—'हे पिता! इन्हें क्षमाकर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या करते हैं।' तभी एक सोटे की भारी चोट खाकर वह गिर गया।

शिमियोन जेरूसलम का धर्माध्यक्ष था। जब यह पकड़ा गया तब १२० बरस का बुड्ढा था। उसने कितने ही दिन तक कोड़े खाये पर वह न मरा। अन्त में तंग होकर हत्यारो ने उसे क्रूस पर चढ़ा दिया।

इग्नाट्रिथ ट्राजन अन्तैखिया नगर का मण्डलाध्यक्ष था। शिमियोन के ३ वर्ष बाद ईसाई होने के अपराध मे प्राणघात करने को रोम नगर मे पहुँचाया गया। उसने रोम के अधिकारियो को चिट्ठी लिखकर कहलाया—'सूरिया से रोम तक मैं जंगली पशुओ से लड़ता चला आता हूँ। मैं दस योद्धाओ के साथ जंजीर से कसा हुआ चलता हूँ। और मै जैसे नित्य उनकी भलाई करता हूँ वैसे

मेरे विरुद्ध उनका कोप बढ़ता है। वे चाहे तो मुझे सिंहो के आगे फेंके, चाहे क्रूस पर चढ़ावे, चाहे मेरे अंग को काटे, यदि मै प्रभु के नाम पर आनन्दित हूँ तो उन पीड़ाओ से क्या होगा ?'

रोम मे पहुँचने पर वह लोगों के सामने ही अजायबघर के जंगली पशुओ के सामने डाला गया। जब उसने सिंहो को गर्जते हुए सुना तो कहा कि 'मै प्रभु मसीह का फटका हुआ गेहूँ हूँ, जब तक जंगली पशुओ के दांत से न पीसा जाऊं तक तक रोटी न बनूंगा। सिह ने झटपट उसे फाड़ डाला। उसके बाद उसकी थोड़ी सी हड्डियाँ जो बच रहीं वे अन्तैखिया मे गाड़ दी गई।

प्लूकार्प स्मूर्ना नगर का सन् १६७ मे मण्डलाध्यक्ष था और योहन प्रेरित का शिष्य था। इसे ईसाई होने के अपराध मे जीते जलाये जाने की आज्ञा हुई। तब इसकी उम्र ८० वर्ष की थी। लोगों ने दया करके उसे समझाया कि अपना विश्वास त्याग दो। तो उसने कहा कि 'मैंने चार कोड़ी छै वर्ष, प्रभु मसीह की सेवा की है, और उसने कभी मेरा अपराध नही किया तो जिसने मोल देकर मुझे निस्तार दिया है मैं क्योंकर उसका विश्वासघाती बनू।' जब वह इंधन के निकट खड़ा हो प्रार्थना कर चुका, तब आग सुलगाई गई। बड़ी २ लपटें उठी पर आश्चर्य था कि वह जला नहीं। पीछे वह तीर से वेधकर मारा गया और उसकी लोथ आग मे फेंक दी गई।

ब्लाडीना दासी बड़ी सुकुमार और दुर्बल थी। ईसाइयो को भय था कि वह कष्ट पाकर अवश्य विचलित हो जायगी। पर जब

उस पर प्रातः काल से लेकर संध्या तक मार पड़ी—यहाँ तक कि उसकी चमड़ी के धुर्रें उड़ गये, शरीर ऐंठकर कमान हो गया और जगह जगह से ऐसा क्षत विक्षत हो गया कि हत्यारों को उसके जीते रहने पर आश्चर्य होता था। पर वह अन्तिम सांस तक कहती गई कि 'मैं ईसाई हूँ।' अन्त में उसे हाथ फैलाकर एक खंबे से बांध दिया और पशु छोड़ दिये कि फाड़ डालें, पर पशु उसे सूंघकर चले गये। कदाचित् उन्हे दया आ गई हो। तब उसे अगले दिन के लिये रख छोड़ा। दूसरे दिन जब वह फिर मरने के लिये बुलाई गई तो आनन्द से कदम बढ़ाकर वध स्थान पर गई। आखिर एक जाल में लपेट कर उसे सांड़ के आगे डाला गया और इस तरह उसका अन्त हुआ।

परपिट्ठ एक २२ वर्ष की विवाहिता स्त्री थी। उसकी गोद में एक छोटा बच्चा था। जब उसे ईसाई होने के अपराध में वध की आज्ञा दी तो प्रथम उसका बालक छीनकर क्रूरता से मार डाला गया। फिर उसे वध स्थान पर ले चले। उसने निर्भय होकर मृत्यु का सामना किया। उसके वृद्ध पिता ने स्नेह वश उसे विचलित करना चाहा परन्तु उसने बड़ी वीरता पूर्वक कहा—'पिता, शान्त हो, यह धर्म युद्ध क्या पीछे हटने का समय है। आत्मा में बल आने दो—ईश्वर के लिये इसमे विघ्न मत करो।' इतना कह कर वह वध स्थान पर आ खड़ी हुई और पशुओ से फाड़ डाली गई।

लिकस्त सन् २६० में रोम की ईसाइयों की मण्डली का अध्यक्ष लिकस्त नाम का मारा गया। जब नगर के अधिकारी ने सुना कि मण्डली के पास बड़ी भारी धन सम्पति है तो लौरिन्तिय नामक प्रधान सेवक को बुलवाकर उसने आज्ञा दी कि सब धन हाज़िर करें। उसने कहा—सब धन सम्पति को संभालने और उसका बीजक बनाने के लिये मुझे तीन दिन का अवकाश दीजिये।

तीसरे दिन वह समस्त रोम के कंगालों को इकट्ठा कर प्रधान के महल में आ हाजिर हुआ, और प्रधान से कहा—कि हमारे प्रभु की सम्पत्ति को संभालियेगा। आपका सारा आंगन सुनहरे पात्रों से भरा पड़ा है। प्रधान ने बाहर आकर जब कंगालों का झुण्ड देखा तो आपे से बाहर होगया। और उसने ज्वालामय नेत्रो से उसकी ओर देखा—लौरिन्तिय ने कहा—आप क्रोधित क्यो होते हैं आप जिस सोने को चाहते हैं वह धरती की एक साधारण धातु है जो मनुष्यों को समस्त पापो मे फंसाती है। वास्तविक ईश्वर का धन तो यही है। देखिये, कितने मणि, रत्न, स्वर्ण मुद्रा जगमगा रहे हैं। ये कुमारिकाये और विधवाये बड़े बड़े रत्न हैं। प्रधान ने डपट कर कहा—मुझसे ठट्ठा करता है, ठहर! तूने शायद मरने पर कमर कसली है। उतार कपड़े। उसे नंगा करके लोहे की बड़ी झंझरी पर लिटाकर धीमी आंच से भूनना शुरू किया। वह धैर्य पूर्वक एक करवट भुनता रहा—तब उसने प्रधान को पुकार कर कहा—'यह पंजर तो पक चुका, अब दूसरी कर्वट भुनवाइये। दूसरी कर्वट लेने पर जब उसका जीवन

थकित हुआ तो उसने रोम के निवासियों के लिये सुख और आरोग्य का आशीर्वाद मांगा और सदा के लिये मृत्यु की गोद में सो गया।

इसी वर्ष कैसरिया नगर में कूरिल नामक एक छोटा-सा बालक रहता था। वह ईसा का नाम नित्य लेता था। इस के लिये उसके साथी लड़कों ने मारा, बाप ने घर से निकाल दिया, अन्त में वह रोम के न्यायाधीश के पास पहुँचाया गया। न्यायाधीश ने उसे समझा कर कहा—"बच्चे, तू बड़ा सुकुमार है, तू यह कैसा पाप करता है कि मसीह का नाम लेता है? उसे छोड़ दे मैं तुझे तेरे बाप के पास भेज दूंगा और समय पर तू उसकी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी बनेगा।"

परन्तु बालक ने तेज-पूर्ण स्वर में कहा—"आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद! पर मैं परमेश्वर के नाम पर कष्ट भोगने में सुखी हूँ, प्रभु मसीह ने भी कष्ट भोगे हैं, मुझे घर से मोह नहीं है, क्योंकि मेरे प्रभु का घर इससे उत्तम है और न मुझे मरने का डर है, क्योंकि प्रभु का उपदेश है कि मृत्यु ही उत्तम जीवन देता है।"

न्यायाधीश उसके उत्तर से दङ्ग हो गया। उसने डराने के लिये उसे वध-स्थल पर ले जाने की आज्ञा दी। न्यायाधीश को आशा थी कि बालक भयङ्कर आग को देख कर डर जायगा। पर जब वह लौट कर भी वैसा ही सतेज और निर्भीक बना रहा तो न्यायाधीश बड़े विचार में पड़ा। वह दया-वश उसे मारना

न चाहता था। उसने फिर उसे समझाया। बालक ने कहा—"शीघ्र अपनी तलवार का काम खतम कीजिये, मैं प्रभु के पास जाऊं। यह द्विविधा का जीवन मुझ से एक क्षण भी नहीं सहा जाता।"

जो लोग आस पास खड थे, रोने लगे। उसने सब से उत्साह-पूर्ण वाक्यों मे कहा—"खेद है कि तुम नहीं जानते कि मैं कैसे सुन्दर नगर को जाता हूँ। इस बात को तुम जानते तो निश्चय आनन्द मानते।" इतना कह वह बड़े आनन्द से वध-स्थल की ओर गया।

सन् १६४१ ईस्वी में आयर्लैंड में जब ईसाई लोग पोप के धर्म को छोड़कर प्रोटेस्टेन्ट होने लगे तब पोप ने फतवा दे दिया था कि "तमाम आदमी जो प्रोटेस्टेन्ट हो गये हैं, मार डाले जावें।" उस घोषणा के आधार पर लगभग दो लाख ईसाई बड़ी निर्दयता से मार डाले गये थे। इस महावध की खबर सुनकर पोप ने आयर्लैंड में एक बड़ा भारी उत्सव किया था।

ड्यूक आफ आलवा (Duke of Alwa) जो कि उस समय नैदरलैण्ड (Netherland) का गवर्नर था, उसने सहस्रों जल्लाद नौकर रख छोड़े थे जो प्रोटेस्टेन्टों को कत्ल किया करते थे। दो वर्ष के अन्दर उन्होंने ३६ हजार ईसाइयों को मार डाला था। जो गाँवों और बस्तियों में बच रहे थे उनपर अतिरिक्त टैक्स लगाकर यह अत्याचारी चार करोड़ रुपया प्रति वर्ष वसूल किया करता था। इसका पोप के दरबार में बड़ा आदर था।

पोपों ने एक गुप्त समाज पहले पहल स्पेन देश में बनाया, फिर इटली मे और पीछे अन्य देशों में भी। इसका नाम इनकिजिशन (Inquisition) अर्थात् कसने का समाज था। इसमें अनेक प्रकार के भयानक शिकंजे मनुष्यों को कसने या उनके अंगों को काटने के लिये रक्खे गये। कोई स्त्री, पुरुष या बालक यदि इस अपराध में पकड़ा गया कि वह पोप का विरोधी है—प्रोटेस्टेन्ट है—तो उसे उसमें कसते थे—कष्ट देकर सब भेद पूंछते थे। इसके मेम्बर रात को लोगो के घर में घुस जाते और उन्हें सोते हुये उठा लाते तथा इसमे कस देते थे। इसके सिवा जो लोग इन शिकंजों में दबने से कई दिन तक भी न मरते थे और न पोप के धर्म को स्वीकार करते थे उन्हें जीता जला दिया जाता था। एक टोलेडो (Toledo) नामका बिशप था जो प्रोटेस्टेन्ट हो गया था। उसने यह उपदेश दिया था कि पोप मे क्षमा कराने की शक्ति नहीं है। तुम्हारे प्रभु मसीह का प्रायश्चित ही काफी है। इस अपराध मे उसे इस सभा ने १८ वर्ष तक जेल मे रक्खा था। यह हत्यारी सभा सन् १४८१ से सन् १८०८ तक ३२७ वर्ष तक अखण्ड रूप से चलती रही और इस बीच में इसने ३ लाख ४१ हज़ार २१ (३४१०२१) प्राणियों को वध किया जिनमे ३२ हज़ार के लगभग जीते जलाये गये, २ लाख ९१ हजार ४५६ अर्थात कुछ कम ३ लाख ऐसे महा दुःख और कष्ट में डाले गये जो बयान से बाहर हैं १७॥ हज़ार ऐसे थे जो या तो क़ैद मे मरे या निकल भागे—उनके चित्र बनाकर जला दिये गये कि लोग डरें।

आरविन साहब (Arvina) नामक एक विद्वान् ने हिसाब लगाया है कि—

१—पोप जूलियस (Julius) के राज्य-काल में ७ वर्ष के भीतर दो लाख क्रिस्तान मारे गये।

२—फ्रांस मे पोपों ने ३ मारा में २ लाख ईसाई मारे।

३—फिर उन्होंने वालदेन्सी और आलबीगेन्सी (Waldenses and Albigenses) क्रिस्तानियों मे १० लाख आदमी क़त्ल किये।

येसुवीत समाजियों (The Teswits) के तीन वर्ष के बीच नौ लाख ईसाई मारे गये थे। ड्यूक ऑफ आलावा की आज्ञा से ३६ हज़ार ईसाई मारे गये। इस प्रकार धार्मिक अत्याचार की भेंट निरपराध ५ करोड़ ईसाई स्त्री बच्चे बूढ़े जवान मार डाले गये।

हज़रत मुहम्मद ने इस्लाम धर्म की नीव डाली। आरम्भ में उन्हें सफलता न मिली। उन्होंने तलवार को धर्म का माध्यम बनाया। उन्होंने घोषणा की—

मेरे धर्म के प्रचारकों की तर्क के झगड़े में न पड़कर तलवार पर ही भरोसा करना चाहिये जो आदमी मेरा धर्म स्वीकार न करे या उस पर सन्देह करे उसका सिर काट लेना चाहिये। मेरे धर्म में तलवार ही सब कुछ है। जो कोई धर्म युद्ध में मरे मारेगा बहिश्त पावेगा, जहाँ शराब की नदियाँ, उत्तम मांस के पकवान और स्त्रियां तथा गुलाम मिलेंगे।

मुहम्मद साहेब ने तलवार के ज़ोर पर बहुत शक्ति पैदा करली और मृत्यु के समय १ लाख के लगभग उनके अनुयायी थे। सारे अरब में इस्लाम धर्म फैल गया था, मुहम्मद साहेब की कड़ी आज्ञा थी कि सारे अरब जो मेरे धर्म को अस्वीकार करें उसे क़त्ल करदो, भाइयों, मित्रों और सम्बन्धियों का भी लिहाज़ न करो। मन्दिरों तक में किसी को शरण पाने पर भी लिहाज़ न करो। उसने अपने जीवन में भी यमन और शाम देशों पर सेनायें भेजी।

उनकी मृत्यु के बाद ख़लीफ़ा अख्तर ने तुरन्त सारे अरब से सैन्य संग्रह की और उसके चार भाग करके दमिश्क, शाम, फिलस्तीन और ईरान पर चढ़ाई कर दी। इन सेनाओ मे लगभग ८० हजार मुसलमान सिपाही एकत्र किये गये और उन्होने शाम दमिश्म की ईंट से ईंट बजा दी। ऐसे अत्याचार और निर्दयता से मार काट की कि देश का देश कुचल दिया गया। शाम का बादशाह २ लाख सेना सहित नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। इस मुहिम के दौरान में एक बार ऐसा हुआ कि खलीद सेनापति ४००० सवार लिये धावा मार रहा था। मार्ग में उसने कुछ राहगीरों को जा पकड़ा जो नदी किनारे खाना बना रहे थे। स्त्रियाँ भोजन बना रहीं थीं, बच्चे इधर उधर खेल रहे थे, पुरुष कपड़े सुखा रहे थे। ख़लीद ने उन्हें लूट कर क्रूरता पूर्वक काट डाला। सुन्दरी स्त्रियों को कैद कर लिया। शाम के बादशाह की बेटी भी उन में कैद कर ली गई। जब उसका परिचय प्राप्त

हुआ तो खलीद ने घमण्ड से कहा—जाकर अपने बाप से कह कि इस्लाम धर्म स्वीकार करले वरना मैं उसका सिर काटने आ रहा हूँ और उसे छोड़ दिया ।

इसके बाद ख़लीफा उमर ने अपने शासन काल की ग्यारह वर्ष की अवधि मे शाम, मिश्र और पैलस्टाइन तथा ईरान को पूर्णतया फतह कर लिया था। इस ख़लीफ़ा ने ३६ हजार नगर और क़िले काफिरों से छीने, ४० हज़ार गिर्जे और मन्दिर ढहाये और लगभग ८ लाख स्त्री बच्चे और पुरुष क़त्ल किये । इन में एक लाख पारसी थे। फारिस के बादशाह का एक डब्बा जवाहरात का सेना के हाथ लगा था जिसे ख़लीफा के हुक्म से बेच कर फौज में बांट दिया गया । यह डब्बा ३ लाख बीस करोड़ रुपये मे बिका। उस समय ४० हज़ार सेना वहाँ थी, सब को अस्सी अस्सी हज़ार रुपये बाँट दिया गया । इसी ख़लीफा ने पृथ्वी का महान् नगर सिकन्दरिया और संसार का अद्भुत पुस्त-कालय नष्ट किया। सिकन्दरिया की नीव बादशाह सिकन्दर ने डाली थी—वह नगर एशिया और योरोप के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था ।

इसके बाद उस्मान ख़लीफा हुये। उसने फारिस के मुल्क पर चढ़ाई बोल दी। वहाँ के बादशाह यज्दगुर्द की बाबत ख़लीफा उमर कह गये थे कि उसे जिन्दा न छोड़ना । इस ख़लीफ़ा ने अनायास ही चार हज़ार वर्ष पुराने उस राज्यवंश और देश को सदा के लिये विध्वंस कर दिया। यह ११ वर्ष तक ख़लीफ़ा रहा ।

यह नगर यूनानी इञ्जिनियरों ने बड़ी सावधानी से बनाया था और उस में चार हजार महल, पाँच हज़ार स्नान घर, चार सौ नाट्यशालाएं, बारह हज़ार बाग़ और अन्यों के अलावा चालीस हज़ार यहूदी करोड़ पति थे। इस में एक महान् पुस्तकालय था जो अजायबघर के नाम से मशहूर था। इसमें पृथ्वी भर की दश लाख पुस्तके संग्रहीत थीं जिन मे ऐसे ग्रन्थ भी थे जिनका एक एक का मूल्य पैंतालीस हज़ार रुपये तक था।

जब यह नगर मुसलमानों ने विजय किया तो खलीफा से पूंछा गया—कि इस पुस्तकालय को क्या किया जाय ? तो उसने उत्तर दिया—अगर ये किताबें कुरआन के अनुकूल हैं तो इनकी आवश्यकता नहीं—क्योंकि क़ुरआन ही काफी है। और यदि उसके विपरीत है तो भी उनकी ज़रूरत नहीं। अतः सब पुस्तकों को नष्ट कर दो। मुसलमान सेनापति ने पाँच हज़ार हमामों को वे पुस्तकें बांट दीं जहाँ वे इन्धन के स्थान पर जलाई गईं और इस प्रकार ६ मास तक उन से हमाम गर्म किये गये।

भारतवर्ष में मुस्लिम आक्रमण कारियों के अत्याचार भी कम रोमाञ्चकारी नहीं। गुलाम वंश के कुतुबुद्दीन ऐबक ने हांसी, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, रणथम्भोर, अजमेर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात मे हाहाकार मचा दिया था। हजारों मन्दिर जमीदोज़ कर दिये गये, और लाखो स्त्री पुरुषों को गाजर मूली की भांति काट डाला गया। इसके गुलाम—मुहम्मद ने काशी के हज़ारों मन्दिरो को ढहा दिया और बिहार, बङ्गाल मे पाल और

सेन वंशीय राजाओं के राज्योको विध्वंस कर दिया। बारह हज़ार बौद्ध साधुओ के सिर काट लिये और उनका अप्रतिम ग्रन्थागार भस्म कर दिया। उन्होंने अलतमश, के प्रसिद्ध मन्दिर को ढहा दिया और करोड़ो रुपये की सम्पदा लूट ली।

जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिलजीने जैसलमेर पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा मारा गया, नगर विध्वंस कर; दिया गया और रानी को चौबीस हज़ार राजपूतानियों के साथ जल कर लाज बचानी पड़ी। उसका भतीजा अलाउद्दीन दक्षिण तक बढ़ गया और देवगढ़ के राजारामदेव यादव से विश्वासघात करके उसे मार डाला, राजभवन लूट दिया मन्दिर ढहा दिये और करोड़ो रुपये की सम्पदाएं छीन ली। इस के बाद जैसलमेर चित्तौर और गुजरात पर जिहाद की चढ़ाई की। जैसलमेर में सोलह हज़ार और चित्तौर मे तेरह हज़ार स्त्रियां भस्म हो गईं। गुज़रात के राजा की रानी और राजकुमारी अलाउद्दीन के हाथ लगी और उन्हे बलपूर्वक अपनी स्त्री बना लिया गया।

इस बादशाह ने हिन्दुओं की यह दुर्दशा कर रखी थी कि कोई हिन्दू सवारी के लिये घोड़ा न रख सकता था, न शस्त्र धारण कर सकता था, न बढ़िया कपड़े पहन सकता था, एक बार उसने काज़ी से पूंछा कि हिन्दुओ के लिये क्या कानूनी अधिकार हैं तो उस ने कहा :—

"हिन्दुओं का नाम ख़िराजगुज़ार है, जब मुसलमान हाकिम उससे चांदी मांगे तो उसे वे उज्र हाथ जोड़ कर हाकिम

को चांदी की जगह सोना भेंट करना चाहिए । यदि मुसलमान उसके मुंह में थूकना चाहे या मैला डालना चाहे तो उन्हें अपना मुंह खोल देना चाहिये कि मुसलमान को तकलीफ न हो । क्योंकि खुदा ने हिन्दुओं को महा नीच और घृणित बनाया है।

इसके बाद उसने बादशाह से कहा—"आपके राज्य मे काफिरों की यह दुर्दशा हो गई है कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर रोते और भीख मांगते फिरते हैं । इस शुभ काम के लिये खुदा आपको जन्नत न भेजे तो मैं ज़िम्मेदार हूँ।

पाठक इस धर्म गुरू की भयानक वृत्तियो से आप अनुमान लगा सकते हैं कितनी भयानक है।

मुहम्मद तुग़लक ने जिहाद में इतना रक्तपात किया कि लाखों आदमियों को गाजर मूली की भाँति कटवा डाला। नाक कान कटवाना, आँखें निकलवाना, सिर मे लोहे की कील ठुकवाना, आग मे ज़िन्दा जलवाना, आरे से चिरवाना, खाल खिचवाना, हाथी से कुचलवाना, सिंह से फड़वाना, सांप से डसवाना, यह इस व्यक्ति की मनोरंजक सजाये थीं।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने नगर कोट को विजय करके गौ मांस के टुकड़े तोवड़ों मे भरकर हिन्दुओ के गले में लटकवा दिये थे। और उन्हें बाज़ार में फिरा फिराकर खाने की आज्ञा दी थी। जिसने इंकार किया उसका सिर काट लिया गया था। फ़ीरोज़शाह जब जम्मू गया और वहाँ का राजा उससे मिलने

आया तो उसके मुंह में उसने गौ मांस ठुसवा दिया। तमूर लंगड़ा जहाद का झण्डा ले ९२ हजार सवार लेकर लूटमार और कतल करता आया और भटनेर में १ घण्टे मे १० हजार स्त्री पुरुषों को काट डाला। यहाँ से यह दिल्ली पहुँचा और १ लाख हिन्दुओ के सिर काटकर इसने ईद की नमाज पढ़ी। तुजुक तैमूरी मे लिखा है कि इसके प्रत्येक सिपाही ने १५।१५ हजार हिन्दू मारे। यहाँ से वह मेरठ पहुँचा और हजारों स्त्री पुरुषों को क़तल किया और हजारों को कैद किया। प्रत्येक सिपाही के हिस्से में बीस से सौ कैदी तक आये। वहाँ से वह हरिद्वार गया, जहाँ गंगा का पर्व था। वहाँ लाखो यात्रियो को कत्ल कर उनके ख़ून से गंगा जल को लाल कर दिया।

सिकन्दर लोदी के अत्याचार प्रसिद्ध हैं बाबर ने जब फतहपुर सीकरी को विजय किया तब इतने हिन्दुओं को कत्ल कराया था कि उसके तम्बू के सामने ख़ून की नदी बह निकली थी। औरंगजेब के अन्ध धर्म के अत्याचार जगत प्रसिद्ध हैं। इसने असंख्य मन्दिर ढहाये, कुरुक्षेत्र मे लाखों मनुष्यों को मार कर ख़ून की नदी बहाई, गुरू तेगबहादुर के एक शिष्य को आरे से चिरवाया, दूसरे को खौलते तेल मे डालकर औटाया, स्वयं गुरू का सिर कटवाया। सत नामधारी साधुओं को कत्ल करा दिया।

अंग्रेजी अमलदारी में यद्यपि इस प्रकार के अत्याचारों के मौके नहीं मिलते परन्तु धार्मिक अन्ध विश्वास के कारण ही

मुसलमानों ने मुलतान, मलावार, अजमेर, सहारनपुर, दिल्ली, गोंडा, कोहाट आदि स्थानों मे हिन्दुओं पर अत्याचार किये हैं।

जहाद की युद्ध यात्रायें करनी इस्लाम धर्म की धार्मिक आज्ञाये हैं। सूरावकर में लिखा है—"जो मुसलमान जहाद में मारा जाय उसे मुर्दा न समझना चाहिये, सूरानिसा मे लिखा है—"काफिरों को मित्र मत वनाओ और यदि वे मुसलमान न हो जायं तो उन्हें मार डालो।" सूरावकर मे एक स्थान पर लिखा है—"जिस जगह काफिर को देखो मार डालो और उसे घर से निकाल दो।"

प्राचीन भारत के धर्म संघर्ष पर भी एक दृष्टि डालिये। बुद्ध की मृत्यु के ढाई सौ वर्ष के अन्दर उस समय के हिन्दू धर्म को भारत से निकालकर वौद्धों ने अपना एकाधिकार कर लिया था। परन्तु पुरोहितों की ओर से वरावर उनके विपरीत विद्रोह की आग सुलगती ही रही। धीरे धीरे प्रतिमा पूजन हिन्दू और वौद्ध दोनो में प्रचलित हुआ, फिर वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय वढ़े और सवने मिलकर वौद्ध धर्म को निकाल वाहर किया। अपने काल में वौद्धों ने वड़े वड़े भयानक अत्याचार किये थे। वल पूर्वक नागरिकों की सम्पदा वे हरण करते, उनके उत्तराधिकारियों को भिक्षु वनाते और न जाने क्या क्या अन्धेर करते थे। अन्त में हिन्दुओ ने वौद्धों को नगर से वाहर मरघटो में रहने को विवश किया। और पुरोहितों और पण्डो के अत्याचार पूर्ण जीवन फिर उत्पन्न होगये।

आज भी धर्म सम्बन्धी अत्याचार वैसे ही बने हुये हैं। धार्मिक अत्याचारों का एक प्रमाण तो यह है कि आज छः करोड़ अछूतों को हिन्दुओं ने पैरों में बल पूर्वक कुचल रक्खा है। उन की स्त्रियां, बच्चे, बुजुर्ग किसी को भी उन्नत होने देना अपराध समझा जा रहा है। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि निकम्मे मूर्ख, ठग, भिखारी ब्राह्मण—सिर्फ ब्राह्मण जाति में जन्म लेने के कारण श्रेष्ठ समझे जाते और अन्य जाति के श्रेष्ठ पुरुष नगण्य समझे जाते हैं। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि करोड़ों विधवाएं बचपन से वृद्धावस्था तक में ही मृतपति के नाम को रोती हैं जिसे उन्होंने कभी देखा तक भी नहीं।

भविष्य में ये धार्मिक अत्याचार नहीं जिन्दा रहने पावेंगे। इन धर्म ढकोसलों को नष्ट करके प्रत्येक मनुष्य को आजाद होना होगा। अछूतों, विधवाओं, ग़रीबों, ब्राह्मणों और शूद्रों को मनुष्य के सब अधिकार मिलने चाहिये। और उन्हें हर तरह उन्नत होने का अवसर प्राप्त होना चाहिये।

पांचवां अध्याय

हत्या

कुछ दिन पूर्व देशाटन करते हुए मुझे श्री वैधनाथ धाम जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उस दिन विजया दशमी थी। मन्दिर मे बहुत से बाहर के यात्री आए थे। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर पण्डे के साथ मन्दिर को चले। ज्योंही हमने मन्दिर के प्राङ्गण में प्रवेश किया कि देखा, एक व्यक्ति कुछ विचित्र सी वस्तु केले के पत्ते मे लपेटे बड़ी स्वच्छता से लिये जा रहा है। वह ब्राह्मण था और जनेऊ गले मे डाला था। तिलक भी सारे अङ्ग पर लगा था। मेरे पास बालक था उसने पूंछा यह क्या चीज़ है? मैं स्वयं भी उसे कोई अद्भुत फल समझा—पर ज्योंही वह निकट होकर गुज़रा तो मैंने देखा कि वह किसी बकरे की दो टांगें थी।

मैंने चौकन्ना होकर पण्डे से पूंछा कि यह क्या है ? उसने कहा—माई का भोग है । मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में आकर जो देखा उसे देख कर आँखें खुल गईं । मैंने अपनी आँखो से जीवित पशु का हनन इतने निकट से कभी नहीं देखा था, पर वहाँ सन्मुख मैंने देखा कि यथार्थ नाम खून की नदी बह रही है और सैकड़ो धड़ इधर उधर तड़प रहे हैं । और एक एक क्षण में खटाखट हो रही है। इतना अधिक रक्त एक बारगी ही देखकर और ऐसा भयानक दृश्य देख कर मेरी पत्नी और बालक तो इस तरह भयभीत हुये कि मैंने समझा कि वे बेहोश होजावेंगे । मैं स्वयं भी बहुत ही विचलित हो उठा, पर तुरन्त मैं एक क़दम और आगे बढ़ गया और ग़ौर से वह अभूतपूर्व दृश्य देखने लगा ।

मन्दिर का प्राङ्गण बहुत विशाल था। उसमे पचास हज़ार मनुष्य खुशी से समा सकते थे। और उस समय पन्द्रह बीस हज़ार मे कम स्त्री पुरुष वहाँ न होंगे। हठात वेग से खाण्डा पड़ता और धड़ रक्त का फव्वारा छोड़ता हुआ धरती पर तड़पने लगता सिर को मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हुआ पुजारी रस्सी के सहारे फुर्ती से ऊपर खींच लेता। पाँच आने पैसे, एक नारियल और कुछ पुष्प एक दोने मे रखकर सिर के साथ पशु के स्वामी को और देने पड़ते तब यह स्वयं जाकर सिर को देवी की भेंट कर सकता था। वहां से उसे दोने में प्रसाद मिलता । वह बाहर आ कर अपने पशु का धड़ खींच कर एक ओर ज़रा हट कर बैठ

जाता और उसकी खाल उधेड़ना शुरू करता। पण्डे लोग भी जुट जाते और वहीं उसका खण्ड खण्ड करके हिस्से बाँट लिये जाते ।

मन्दिर मे चारो ओर यही बूचड़खाना फैला हुआ था। मेरे पैरों में मानों लोहे की कीलें जकड़ दी गई थी । मैं लगभग ८ या ८॥ बजे मन्दिर मे घुसा और एक बजे तक जब तक कि वधिक अपना काम करता रहा, वहीं खड़ा रहा। मेरी पत्नी और साथी लोग हताश होकर एक तरफ हट कर बैठ गये थे । मैंने हिसाब लगा कर देखा कुल मिला कर लगभग बारह सौ बकरे वहाँ मेरे सन्मुख काटे गये और तीन या चार भैंसे। भैंसों के सिर काटने, उनके तड़पने, उनके सिर को यूप मे फंसाने का दृश्य अत्यन्त भयानक और राक्षसी था आज भी मैं उस दृश्य को याद करके भयभीत हो जाता हूँ। यह अनिवार्य था कि एक ही प्रहार में सिर कट जाय और वह सिर धरती में न गिरने पावे ।

मैंने मन्दिर की मूर्त्ति नहीं देखी । मैंने लौट कर स्नान किया और धर्मशाला से सामान उठा स्टेशन की राह ली। उस पाप पुरी में हम लोग अन्न जल ग्रहण न कर सके ।

वहाँ मैंने मछलियों के खुले बाजार देखे । आंगन की एक ओर शिवजी का मन्दिर था और दूसरी ओर देवी का। दोनों मन्दिरों की कलशों पर बहुत सी लाल रंग की कत्तरे बंधी थीं। जिनका एक सिरा इस मन्दिर के कलश मे और दूसरा दूसरे के कलश में था। देवी के मन्दिर का चबूतरा इतना ऊंचा

था कि खड़े मनुष्य के गर्दन तक आता था। उसी के सामने एक काष्ट का यूप गढ़ा था जिसमें एक गढ़ा इस भाँति किया गया था कि उसमे पशुकी गर्दन आसानी से आ सके। गर्दन फंसाकर एक छिद्र द्वारा लोहे के एक सींखचे से उसे अटका दिया जाता था। चबूतरे पर एक आदमी हाथ में एक छींका जैसी वस्तु रस्सी के सहारे पकड़े खड़ा था। बधिक ब्राह्मण था, और वह स्नान कर तिलक छाप लगाये स्वच्छ जनेऊ पहिने हाथ में खांडा लिए खड़ा था। प्रत्येक जीव की हत्या करने की उसकी फीस एक आना थी। इकन्नियों की उस पर वर्षा हो रही थी, उसने अपनी धोती में एक पोटली बाँध रक्खी थी जिसमे वह उन इकन्नियों को डाल रहा था। लोग अपने अपने पशुओं को कोई धकेल कर, कोई कन्धे पर, कोई रस्सी द्वारा खींचकर और कोई मारता हुआ ला रहा था। मैंने भली भाँति से देखा—कि प्रत्येक पशु अपनी असल मृत्यु को समझ रहा था और वह भय से कम्पित और अश्रुपूरित था। सब पशु आर्तनाद कर रहे थे। कटे हुये सिरो के ढेर और फड़कती हुई लाशों को देख के मूर्छित से होकर गिरे पड़ते थे। प्रत्येक आदमी की इच्छा पहिले अपना पशु कटाने की थी और प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़कर अपनी इकन्नी बधिक के हाथ मे थंभा देना चाहता था। वधिक इकन्नी टेंट मे रखता और पशु के स्वामी पशु को यूप के पास धकेलते, वधिक का सहायक फुर्ती से उसकी गर्दन यूप में फंसाकर यूप के छेद मे लोहे का सरिया डालता और छींका उसके मुख पर लगा देता।

मन्दिर के एक स्थान पर स्त्रियाँ दोनों में कुछ अद्भुत घिनौली वस्तु लिये बैठी थीं। सड़ी हुई लीची को छील कर रखने से जैसी आकृति होती है, वैसी वह चीज़ थी, पूंछा तो कहा—'आँखें हैं' अर्थात् मरे हुये पशुओं की की आँखें निकाल कर एकत्र की गई हैं। पूंछा कि इनका क्या होता है ? कहा—खाते हैं।

मैंने इस घटना से दस वर्ष पूर्व जयपुर आमेर की शिलादेवी के आंगन मे वध हुये वकरे को देखा था, और विन्ध्याचल के मन्दिर में साधारण दृश्य देखा था—पर ऐसा भयानक रोमांचकारी वूचड़खाना, और खुले आम पशुओं का बध इतनी अधिक संख्या मे मैंने नहीं देखा। मेरी इतनी अभिरुचि देखकर पण्डे ने मुझे भी एक वकरा माई की भेंट करने को प्रोत्साहित किया। और कहाँ से वह सस्ता बकरा ले आवेगा यह भी उसने बताया।

वहाँ से मै कलकत्ते गया। वहाँ कालीजी के मन्दिर में भी मैंने अल्प संख्या मे यही दृश्य देखा, और इसी भाँति का मांस विक्रय का बाज़ार भी देखा। अन्य काली, दुर्गा आदि के मन्दिरों में इसी प्रकार से पशु वध होते ही हैं। और मेरे लिये यह अनोखी घटना थी—पर हिन्दू जाति के धर्म तत्व को जो भाग्यवान् लोग समझते हैं—वे जानते हैं कि इसमे अनोखा कुछ भी नहीं है। सब स्वाभाविक ही है।

मन्दिरों मे देवताओ के सामने पशु का वध करना यह

केवल भारतवर्ष ही मे नहीं प्रत्युत किसी जमाने में सारे संसार की पुरानी जातियो मे प्रचलित था। रोम, ग्रीस, मिश्र और दूसरी उन्नत जातियाँ भी देवताओ के सामने पशु हत्या करती थीं और इसे वे पवित्र कर्म मानती थी।

यदि विचार कर देखा जाय तो यह विधि यज्ञ भी हिंसाओं से चली।

यज्ञ में पशु बध की परिपाटी कब से चली—इस सम्बन्ध मे ठीक ठीक प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के साथ मध्य एशिया की जातियो का जो समय समय पर संघर्ष होता रहा था भारत की अनार्य जातियो का जो आर्यों से संपर्क रहा, उनसे ब्राह्मणो के यज्ञ मे पशु वध प्रचलित हुआ। क्योंकि वे सभी जातियाँ बलिदान को पवित्र कार्य समझती थीं॥ यज्ञ मे बलिदान देने के विषय मे शत पथ ब्राह्मण (१। २। ३। ७। ८) में यह लिखा है—

"पहिले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया—और उसने घोड़े मे प्रवेश किया, तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया, जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया—तब उन्होने बैल को बलि दिया—जब बैल बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमे से निकल गया और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ को बलि दी गई तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया, और उसने बकरे में प्रवेश।

किया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया, तो यज्ञ का तत्त्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावल और जौ के रूप में पाया।"

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद सूत्रकाल मे ब्राह्मणों के विस्तृत वर्णनों को स्रौत सूत्रों में वर्णन किया गया है। ये स्रोत सूत्र बौद्ध काल तक बनते रहे और इनमें मांस ,का यज्ञों में खूब उपयोग होता रहा है।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थीं। अश्वमेध यज्ञ में सब प्रकार के पालतू और जंगली जानवर थलचर, जलचर, उड़ने वाले, रेंगने वाले और तैरने वाले मिलाकर ६०९ से कम नहीं होते थे।

कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह व्यौरा लिखा है कि छोटे छोटे यज्ञों मे विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चाहिये। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उसका क्या क्या भाग किसे मिलना चाहिये। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितम्ब, टांग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था, और उसकी स्त्री को पेड़ू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था❀।

❀ अथातः सवनीयस्य पशोर्विभागं व्याख्यास्यामः; उद्धृत्यावदानि हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः कण्ठः स ककुदः प्रतिहर्तुः। श्येनं,पक्ष उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांस मध्वर्योः, सव्यमुपगात्रीणां सव्योंसः प्रति प्रस्थातुर्दक्षिणा श्रेणी

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय में एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिये या गाय का। अन्त में परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही मांस न खाने चाहिए। परन्तु 'याज्ञवल्क्य हठ पूर्वक कहते हैं! 'यदि वह नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं* ।"

इस पवित्र मांस भक्षण का प्रभाव उपनिषदो तक में हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् मे लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्, विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो—वह बैल का मांस चावल के साथ पकाकर घी डालकर खाय† ।

रथ्यान्त्री ब्रह्मणो वस्त कथ्य, ब्रह्माच्छासित वरु पोतु सव्या श्रोणिर्होतुर-परसक्थं मैत्रावरुणस्योरुरच्छवाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्ट्र. सव्यान्सदस्यस्य सदंचानूक च गृहपतेर्जाघ्नी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणे न प्रति ग्राहयन्ति, वनिष्ठुर्हृदयं वृक्कौ चांगुल्यानि दक्षिणो वाहुरग्निंधरय सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ। गृहपतेर्व्रतप्रदस्य, सव्यौपादौ गृहपत्न्या व्रतप्रदायाः (गोपथ ब्रा० ३। १८।)

* सधेन्वै चानडुहश्चनाश्नीयाद्धेनवनडुहौ व इदꣳ सर्वं बिभित-स्ते देवा अब्रुवन् धेन वनडुहो वा इद ꣳ सर्वं विभृतो हन्त यदन्वेषां वयसा वीर्यं तद्धेन वनडुहयोर्दधामेति . तद्धहोवाच याज्ञवल्क्य। श्नाम्येवाहमाꣳ सलचेन्द्भवतीति। (श० ३। १। २। २१)

† अथ य इच्छेत पुत्रो में पण्डितो विजिगीत समितिगमः सुश्रू-षितावाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीत सर्वमायुरियादिति माꣳ सौदनीं पाचयित्वा सर्पिष्मन्त मश्नियातामीश्वरो जनयीत वा औक्षणेन वा ऋर्षभेण वा (बृह० उ० ८। ४। १८)।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की घृणास्पद हत्यायें लोगों को अप्रिय प्रतीत होने लगी थीं। और लोगो ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया था। 'महाभारत में लिखा है' वेद में जो 'अज' से यज्ञ करने को लिखा है उसका अर्थ बीज है बकरा नहीं।

'गायें अवध्य हैं इन्हें न मारना चाहिये।'

"हिन्सा धर्म नहीं है।"

चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने उपहास से कहा था—

'यदि पशु को मारने ही से स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने माता पिता को ही क्यों नहीं मारकर हवन कर देते।'

मत्स्यपुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय मे एक मनोरंजक उपाख्यान है। "ऋषि पूछने लगे—स्वयंभुव मनु के समय त्रेतायुग के प्रारम्भ मे यज्ञ का प्रचार कैसे हुआ ?...

सूत जी ने कहा—वेद मन्त्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में, करके इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया . .जब सामगान होने लगा और पशुओं का आलंभन चलने लगा—तब महर्षि गणों ने उठ कर इन्द्र से पूंछा—तुम्हारी यज्ञ विधि क्या है ? ..यह पशु हवन की विधि तो अनुचित है ..यह धर्म नहीं अधर्म है। तुम धान्य से यज्ञ करो।

पर इन्द्र ने नहीं माना। तव ऋषि सम्राट् बसु के पास गये और कहा—हे उत्तानपाद के वंशधर! तूने कैसी यज्ञ विधि देखी है सो कह:—

वसु ने कहा—द्विजों के मध्य पशुओं से तथा फल मूलों से यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है।

यह सुनकर ऋषियो ने उसे श्राप दिया जिस से उस का अधःपतन हो गया।

यही कथा कुछ फर्क से वायुपुराण में भी है। महाभारत में भी यह मजेदार घटना है।

"इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की जरूरत हुई तव वृहस्पति ने कहा—पशु के स्थान आटे का पशु वनाओ। यह सुन देवता चिल्ला उठे कि वकरे के मांस से हवन करो।

तव ऋपियो ने कहा—महो धान्यो से यज्ञ करना चाहिये। वकरा मारना भले आदमियो को उचित नही। तव वे सम्राट् आदि वसु के पास गये और पूंछा कि यज्ञ वकरे के मांस से करे या वनस्पतियो से।

तव राजा ने कहा—पहिले यह कहो किस का क्या मत है। तव ऋपियो ने कहा:—

धान्य हमारा मत और पशु हनन देवों का।

वसु ने कहा—तव वकरेके मांससे ही यज्ञ करना चाहिये। तव ऋपियों ने उसे श्राप दिया।

महाभारत में (शान्तिपर्व अ० ३४०) में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि यज्ञों में पशुवध वैदिक काल से बहुत पीछे चला है।

श्रीमद्भागवत् में (४।२५।७।८ में) एक यज्ञ के विषय में लिखा है कि हे राजन् ! तेरे यज्ञ में जो हज़ारों पशु मारे गये हैं तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।

एक बार मुझे कालिका जी के मेले मे कुछ मित्रों के साथ जाने का अवसर हुआ। एक ने कुछ मिठाई मन्दिर में चढ़ाई थी। वहां से वे प्रसाद लाकर जब बाँटने लगे तब दौने में से बकरे का एक कटा हुआ कान निकला। तब उन्होंने दौना फेंक अपनी राह ली।

सुअर मुर्गे का बलिदान हिन्दू समाज की नीच जातियों में होली दिवाली को अत्यन्त आवश्यक चीज़ समझी जाती रही है। देखा देखी उच्च जाति के हिन्दू भी यह काम करते हैं।

दया मानवीय स्वभाव का सब से भारी गुण है। मूक और असहाय पशु पक्षियों पर निर्दय होना मनुष्य के लिये सर्वाधिक कलङ्क की बात है। ज्यों २ सभ्यता बढ़ती जाती है मनुष्य की क्रूरता कम होनी चाहिये। शृङ्गार के लिये योरोप की स्त्रिये जिन सुन्दर पक्षियों के पर टोपी में रखती थीं उन की नसल का अन्त हो गया—वे सुन्दर पक्षी अब फ्रांस में हैं ही नहीं। लन्दन में एक व्यापारी ने १ वर्ष में ३२ लाख उड़ने वाले, ८० हज़ार

पानी के और ८० हज़ार अन्य पक्षियों का केवल परों के लिये वध करवाया था। विलायत के एक शहर से ३ दिन मे चौबीस लाख लावा मार कर एक बार लन्दन भेजे गये थे।

जब तक मनुष्य के हृदय में पशुओं के प्रति प्रेम नहीं होता, मनुष्य का हृदय परिवर्त्तन न होगा और घृणास्पद हत्याएं बराबर ही होती रहेगी।

कुछ दिन पूर्व पूने के मराठी-पत्र केसरी में एक यज्ञ का हाल छपा था। जिसे किसी ब्राह्मण ढुंढ़िराज गणेश वापट दीक्षित सोमपा जी ने लिखा था। उसका वर्णन इस प्रकार है।

"गत फरवरी' मास मे मैंने औंध में अग्निष्टोम नामक सोम यज्ञ किया था। और उसमें पशु हनन करके उसके अंगों की आहुतियाँ दी थीं। उस पशु हनन के सम्बन्ध मे वैदिक धर्म की आज्ञा न जानने वालों (?) ने बहुत कुछ लेख अख़बारों में लिखे थे।

ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रम विहित् कर्तव्यों में यज्ञ कर्म मुख्य है। यज्ञ में हवन मुख्य है। और हवन में अनेक देवताओं के उद्देश्य से मंत्र पठन पूर्वक विविध पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये द्रव्य हैं। तथा अज, मेष आदि पशुओं के अवयवों का मांस भी है।

"भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धों ने वैदिक धर्म पर बड़ाभारी हमला किया—जिससे वैदिक यज्ञ संस्था को बड़ा

भारी धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्त वंशीय राजा लोग, शात कर्णी, चालुकर पुलकेशी आदि राजाओं ने अश्वमेध जैसे यज्ञ (कि जिनमें ३०० पशुओं का हवन विहित है) किये और वैदिक परम्परा को स्थिर किया। राजा जयसिंह ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञीयहिंसा हिंसा नहीं है। छाँदोग्य उपनिषद् में कहा है कि—

'माहिंस्यात्सर्वाणि भूतनि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।'

तीर्थनाय शास्त्रानुज्ञा विषय, ततोऽन्यत्रेत्यर्थः।

(शांकर भाष्य)

शास्त्र की आज्ञानुसार जो कर्म किया जाता है—वही तीर्थ है। इस प्रकार के कर्मों को छोड़कर अन्य कर्म में हिंसा करना नहीं चाहिये। तात्पर्य श्रीशंकराचार्य भी यज्ञीय हिन्सा के विरोधी नहीं थे।

"देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ प्रसङ्ग में वेदोक्त विधि से जो पशु हनन होता है—उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिये मांस खाने की इच्छा से जो पशु हनन होता है वही हिंसा है। वेदोक्त पशु हिंसा में देवताओं के लिये मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुत शेष मांस का भक्षण करना भी विधि विहित है। अत: शास्त्राज्ञा रक्षण करने की इच्छा से ही (?) इस हुत शेष का मांस भक्षण किया जाता है।

"वर्णाश्रम विहित होने ही से यज्ञीय पशु हिंसा की जाती है। सोम याग में पशु हिंसा के बिना कर्म पूर्ण ही नहीं हो

सकता। जो निंदक अविचार से तथा वेद शास्त्र की मर्यादा का उल्लङ्घन करके इस प्रकार के सोम यागादि वैदिक कर्मों का उपहास करते हैं, उन से यज्ञ कर्त्ता लोग कम अहिंसावादी हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। अहिंसा परम धर्म अवश्य है, पर उस में भी अपवाद है। क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध मे हिंसा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ कर्त्ता यज्ञ विधि के कारण पशु हनन करते हैं।

यज्ञ में जिस रीति से पशु हनन होता है—वह शस्त्र वध की अपेक्षा कम दुख:दाई हैं।

उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिये, पश्चात् श्वासादि प्राण वायु बन्द करके नाक मुख आदि बन्द करे। इत्यादि सूचनाएं शास्त्रों में कही हैं।

उदीचीनां अस्यपदो निदधात्।
अन्तरे वोष्माणं वारयतात्॥ [ऐ० ब्रा० ६।७]

तथा—

अमायु कृण्वन्तं संज्ञय यतात्॥ [तै० ब्रा० ३।६।६]

अर्थात्—पशु का हनन उसे न्यून से न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये।

पाठक स्वयं ही इस धर्म के पाप रूप को समझ सकते हैं।

छठा अध्याय

व्यभिचार

ईसा के पूर्व पांचवीं शताब्दि में बाबल के लोगों को देवी माई लिट्टा के मन्दिर मे प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन मे एक बार आकर अपने आपको उस परदेशी पुरुष को सौंप देना पड़ता था जो देवी की भेंट स्वरूप सबसे पहले उसकी गोद में पैसा फेंकता था। इस धार्मिक व्यभिचार का आधार यूरोप में इस विश्वास पर था कि मानवों की उत्पादक शक्ति प्रकृति की उर्बरता को बढ़ाने मे एक रहस्यमय और पवित्र पभाव रखती है। कालान्तर मे यह भी समझा जाने लगा कि देवी या देवता के पुजारियों के साथ सम्भोग करने से स्त्री के बाँझ होने का भय नही रहता। भगवत् पूजा में सम्भोग की पवित्रता मे किसी को ऐतराज़ न था।

परदेशी जो पैसा फेक देता था। वह देवी की भेंट चढ़ाया जाता था। और वह स्त्री उस परदेशी के साथ देवी की पूजा का विधान सम्पूर्ण कर उससे सहवास करती और फिर घर लौटकर निर्दोष समझी जाती थी। इसी प्रकार के रिवाज़ पच्छिमी एशिया के दूसरे भाग मे, जैसे उत्तरीय अफरीका, साइप्रस, और पूर्वीय मडिटरेनियन के दूसरे टापुओं में, तथा यूनान में भी था। यूनान के प्रसिद्ध नगर 'कोरिन्थ, में किले के ऊपर 'एफरोडाइट' देवी का मन्दिर था, इस मन्दिर में १ हजार से ऊपर देव दासियाँ थीं, ये देवी के सामने नाचती गाती थीं—देश पर विपत्ति आने पर ये ही देवी से उनके दूर करने की प्रार्थनाये किया करती थी, और इस कारण इनका वड़ा मान होता था। ये स्त्रियाँ अन्य पुरुषो से धन लेकर उनकी कामेच्छा भी तृप्त किया करती थीं।

युरुक में इस्तार देवी का एक मन्दिर था। यह उर्वरता की देवी समझी जाती थी। इसकी उपासिकायें वेश्याये ही रखी जाती थी। इन्हे 'कादिस्तू' की उपाधि मिली थी, जो बहुत ही पवित्र उपाधि कहलाती थी।

"हीरोडोटस" के पहिले इस प्रकार का व्यभिचार वृक्षों की ओट मे होता था और वह धार्मिक समझा जाता था। डा० जे० जी० फ्रेजर ने अपनी 'एडोनिस ऐटिस ओसिरिस, नामक पुस्तक मे लिखा है कि "प्रकृति की उत्पादिका शक्ति की उपासना विविध नामो मे होती थी, पर उसका ढंग प्रायः एक ही सा था। उधर महादेवी और देवता का संयोग होता था तो इधर पुजारिनो

और यात्रियों का जोड़ा वंध जाता था। यूनान के कौरिन्थ नगर में वीनस की मूर्ति की पुजारिने भी वेश्यायें ही थीं। और वे बड़ी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखी जाती थीं ।

ईसा की दूसरी शताब्दि तक यूनान मे यह प्रथा थी कि देवी सेवा के लिये उच्च घराने की स्त्रियाँ व्यभिचार करतीं थीं। इस प्रथा को बादशाह कान्स्टेण्टाइन ने बन्द कर दिया था।

दक्षिण भारत मे देव मन्दिरों में 'देवदासिथाँ' रहती हैं। बचपन मे इनके माता पिता इन्हे मन्दिर में चढ़ा जाते हैं—वहीं ये बड़ी होती हैं। इनका मुख्य काम देवप्रतिमा के सन्मुख नाचना है। ये उस देवता के साथ व्याही होती हैं। इनमें से कुछ सुन्दर स्त्रियाँ पंडे पुजारियों के व्यभिचार की सामग्री होती हैं, शेष देव दर्शन को आये हुए यात्रियों की काम वासना को पूरी करके जीवन निर्वाह करती हैं। ये देव दासियाँ जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के सभी मन्दिरो में नाचती हैं। बचपन में ही जब इनके माता पिता इन्हे मन्दिरों मे दान कर जाते हैं—तब मन्दिर के तत्वावधान मे उस्ताद जी लोग इन्हें नाचने गाने की शिक्षा देते हैं। इससे प्रथम एक रस्म अदा की जाती है कि इनका विवाह देवता की तलवार, फूल, या मूर्ति के साथ कर दिया जाता है। ये मन्दिरो मे या मन्दिरो के आस पास रहा करती हैं। उनके गुजारे के लिये मन्दिर से एक बंधी रक़म मिल जाया करती है।

मद्रास के चिंगलपट जिले के कोरियों में (कपड़ा बुनने वालो) यह रीति है कि वह अपनी सबसे बड़ी, कहीं कही

पांचवीं लड़की को किसी मन्दिर में दान कर देते हैं। इस प्रकार दान की हुई कन्याये महाराष्ट्र मे 'मुरली' कहाती हैं, और तैलंग में 'वसब' कहाती हैं, मद्रास, बम्बई प्रान्तो में उनके भिन्न भिन्न नाम हैं। जैसे योगनी, भावनी, नैकनी, कलावन्ती, देवली, जोगती मातंगीशरणा आदि।

ये स्त्रियाँ मन्दिरो मे तो नाचती ही हैं परन्तु विशेष अवसरो पर बुलाने से अमीरो के घरों पर भी नाचने गाने जाती हैं। ये स्त्रियाँ गले मे ज़ेवर पहिनती हैं, उनमे उनके देवता की मूर्ति भी चित्रित रहती है। कोई इस मूर्ति को केसरिया धागे मे पिरोकर गले मे पहिनती हैं और उसे अपने सौभाग्य का चिन्ह समझती हैं।

मालूम होता है कि देव दासियों की प्रथा बहुत पुरानी है, कालीदास ने अपने मेघदूत काव्य मे उज्जैन के महाकाल के मन्दिर मे इनके नृत्य की चर्चा इस भाँति की है—

पादान्यासैःक्वणितरशनास्तत्रलीलावधूतैः,
रत्नच्छाया खचित वलिभिश्चामरैःक्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तोनखपदसुखान्प्राप्यवर्षाग्रविन्दू—
नामोक्ष्यन्ते त्वयिमधुकर श्रोणिदीर्घान्कटाक्षान्।

बुद्ध भगवान् के सन्मुख भी गया में एक वेश्याओ का झुण्ड नाचता गाता आया था। यह गया के इन्द्रदेव के मन्दिर

की देवदासिएं थीं, इसका आकर्षक वर्णन अंग्रेजी की प्रसिद्ध पुस्तक "लाइट ऑफ एशिया" में किया गया है।

देवदासियों की सम्पत्ति का अधिकार पुत्रों का नहीं, पुत्रियों को मिलता है।

जगन्नाथ जी के मन्दिर मे जो देवदासियाँ होती हैं, वे गान्धारी कहाती हैं। वहाँ उनके १०८ घर हैं, जो बारी बारी से दिन में तीन बार मन्दिर मे नाचने जाती हैं। ये दासियाँ सिर्फ नाचती हैं, गाती नहीं। इनकी एक जाति बन गई है, और उपर्युक्त १०८ घरों मे ही वे परस्पर शादी सम्बन्ध करती हैं।

कुछ दिन हुए, बड़ी व्यवस्थापिका सभा में देवदासियों के सम्बन्ध में एक बिल पेश हुआ था—परन्तु बहुत लोगो ने इसे धर्म में हस्तक्षेप करना बता कर इस का विरोध किया और यह बिल पास न हुआ। सुना है कि महाराज बड़ौदे ने अपने राज्य के मन्दिरों में देवदासियों को बनाना भविष्य के लिये बन्द कर दिया है।

शाक्त सम्प्रदाय का भैरवी चक्र, पञ्चमकार आदि, जिनका मध्यकाल में बहुत ज़ोर हो गया था—और उत्तर भारत, नैपाल आदि मे जो अब भी एक विखरी रीति के स्वरूप में देखने को मिलते हैं, गम्भीरता से—धार्मिक व्यभिचार की दृष्टि से मनन करने योग्य विषय हैं। नैपाल में, सुना गया है कि भैरवी चक्र और नैशोत्सव अब भी होते हैं और बहुत लोग उसी के मानने वाले हैं। वहां जाति पांति का और गम्य अगम्य का कोई भेद

भाव नहीं है। तन्त्र ग्रन्थो मे इस सम्बन्ध मे बहुत ही कुत्सित बातो का वर्णन किया गया है। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लिख कर सर्वथा नोति, धर्म और सभ्यता से हीन बाते लिखो गई है। कालीतन्त्र मे लिखा है :—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
एते पंच मकारा स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे ॥

अर्थात्—मद्य, मांस, मछली, मुद्रा (पूरी कचौरी बड़े) और मैथुन ये पांच मकार युग युग मे मोक्ष देने वाले हैं। कुलार्णव तन्त्र मे लिखा है :—

प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ।
निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा पृथक् पृथक् ॥

अर्थात्—भैरवी चक्र मे प्रवेश होने पर सब वर्ण द्विजाति हैं। भैरवी चक्र से बाहर सब पृथक् पृथक् हैं। ज्ञानसंकलनी तन्त्र मे लिखा है :—

"मातृयोनिं परित्यज्य, विहरेत सर्वे योनिषु ।
वेदशास्त्र पुराणानि, सामान्यगणिका इव ॥"
"एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।
अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु संगमः ।

अर्थात्—माता की योनि को छोड़ कर सब योनियों में विहार करे, वेदशास्त्र मामूलो वेश्या के समान है। सिर्फ अकेली शाम्भु मुद्रा ही कुलवधू की तरह गुप्त है।

केवल इस उटपटांग वाक्य को बोलकर "भैरवी चक्र" मे कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से समागम कर सकता है । इस वाक्य का यह अर्थ होता है कि "मैं भैरव हूँ और तू भैरवी है, आओ हमारा तुम्हारा सङ्गम हो।" साधारणतया जिन स्त्रियों को अपवित्र, अस्पर्श माना है—उन रजस्वलाओं से भी व्यभिचार करने को इन तन्त्र ग्रन्थों में पवित्र कर्म माना गया है । 'रुद्रयामल तन्त्र' मे लिखा है :—

''रजस्वला पुष्करं तीर्थ, चाण्डाली तु स्वयं काशी,
चर्मकारी प्रयागः स्यात् रजकी मथुरा मता ।
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता. . ...

अर्थात्—रजस्वला से सङ्गम करने से पुष्कर स्नान फल, चाण्डाली के समागम से काशी यात्रा, चमारी के समागम से प्रयाग स्नान, धोबिन के समागम से मथुरा यात्रा और कञ्जरी के साथ समागम करने से अयोध्या तीर्थ करने का फल मिलता है । ये लोग मद्य को 'तीर्थ' मांस को 'शुद्धि' और 'पुष्प' मछली को 'जलतुम्बिका' मुद्रा को 'चतुर्थी' और मैथुन को 'पंचमी' के नाम से पुकारते हैं । ये लोग अन्य धर्म वालों को आपस मे 'कंटक, विमुख, भ्रष्टपथ नाम से पुकारते हैं ।

भैरवी चक्र मे पहुँच कर ये लोग धरती वा काठ के पटड़े पर कुछ सतिया जैसा पूर कर उस पर शराब का घड़ा रख कर पूजा करते हैं । और "ब्रह्मशापं विमोचय" मन्त्र पढ़ कर उसे पवित्र बनाते हैं—फिर एक भीतरी कोठरी में एक स्त्री और एक

पुरुष को नङ्गा करके स्त्री का नाम देवी, पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उनके हाथ मे तलवार देते हैं—फिर उनकी गुप्तेन्द्रिय की पूजा की जाती है। तदन्तर उन दोनों को एक एक प्याला शराब दी जाती है—फिर उन्हीं के जूंठे पात्रो में सब पीते हैं। फिर प्रधान आचार्य 'भैरवोऽहं, शिवोऽहं' कह कर एक पात्र पीता है—उसके बाद फिर सब पीते हैं। इसके अनन्तर मांस, बड़े आदि एक बड़े वर्तन में रख कर सब एक साथ खाते पीते हैं और शराब पीते रहते हैं। उसके बाद पंचमी चलती है। सब मतवाले होकर चाहे जिस की बहन, कन्या, स्त्री, माता से व्यभिचार करते हैं। यहाँ तक कि स्वपुत्री का भी परहेज़ नहीं होता। कभी कभी बहुत मतवाले होने पर मारपीट जूतम पैजार भी हो जाती है। किसी किसी को उल्टी हो जाती है—जो वमन को खा लेता है वह सिद्ध माना जाता है। लिखा है :—

'हलां पिवति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायांगणिकागृहेषु।
. . . . विराजते कौलव चक्रवर्ती ॥'

अर्थात् जो कलाल के घर बोतल पर बोतल शराब गटक जाय और रात को वेश्या के घर जा सोवे। वह कौलव चक्रवर्ती है।

ज्ञान संकलनी तन्त्र मे लिखा है—

"पाश बद्धो भवेज्जीवः पाशुमुक्तः सदाशिवः"

इसका वे यह अर्थ करते हैं—कि जो लोकलाज, शास्त्रलाज, कुल लाज और देश लाज की पाशो में बंधा है वह जीव है।

निरद्वन्द है, वह सदा शिव है। इन लोगो मे दश महा विद्यायें प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक 'मातङ्गी' विद्या है—उसका अभिप्राय है "मातरमपि न त्यजेत"।

गुप्त साधन तन्त्र में लिखा है :—

नटी कापालिका वेश्या रजकी नापितांगना।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपाल कन्यका॥
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिता।

अर्थात्—नटनी, कपालिकी, वेश्या, धोबिन, नायन, ब्राह्मणी, शूद्र की लड़की, ग्वालिन की बेटी, मालिन की बेटी ये नौ कन्याएं साधना में काम आनी चाहिये।

इसके सिवा यह श्लोक भी है।

"स्वशक्त्या अयुतं पुण्यं परशक्तिप्रपूजने।'
'ततो वेश्याधिका ज्ञेया...... .... "

"श्रृणु देवी विशेषेण उत्तराम्नाय हेतवे' (ताराभक्तिसुधार्णव)।
'वेश्यागारेश्मशानेवा...... .. . . (पुरश्चरण चन्द्रिका)॥'

शंकराचार्य से पहले इस मत का भारत में बहुत जोर रहा था। और यह बात मैंने किसी प्रामाणिक लेख मे पढ़ी थी कि पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथजी का मन्दिर पूर्व मे भैरवी चक्र था। कृष्ण बलदेव के बीच में पत्नी या माता के स्थान में बहन सुभद्रा की स्थापना, ब्राह्मण अंत्यजों का एक पंक्ति मे भात भोजन, उच्छिष्ट का विचार न करना, और मन्दिर पर के अश्लील—गन्दे चित्र इस बात का प्रमाण हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय, जिसे पुष्टि सम्प्रदाय भी कहते हैं, उसके आचार्य गोस्वामियों के व्यभिचार भी बुरी दृष्टि से नहीं देखे जाते। और यह बात तो स्पष्ट रूप से होती ही है कि शिष्य लोग अपनी प्रत्येक भोग वस्तु गोस्वामी को समर्पण करते हैं। इस पद्धति का बहुत ही सभ्यता-पूर्वक पालन किया जाता है। फिर भी इस सम्प्रदाय में धर्म व्यभिचार बहुत ही बदनाम होगया है। और लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।

पुष्टि मार्ग के १० भाव प्रसिद्ध हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

१—सब तरह केवल गुरु का आसरा पकड़ना।

२—श्रीकृष्ण की भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है।

३—लोकलाज तथा वेदशास्त्र की आज्ञा तजकर गुरुकी शरण आना।

४—देव और गुरु के सामने नम्र रहना।

५—मैं पुरुष नही हूँ, किन्तु वृन्दावन की गोपी हूँ, ऐसा मनमें समझना।

६—नित्य गुसाईंजी के गुण गाना।

७—गुसाईं के नाम का महत्त्व बढ़ाना।

८—गुरुकी आज्ञा पालन करना।

९—गुसाईं जो करे अथवा कहे उसी पर विश्वास रखना।

१०—वैष्णवों का समागम और सेवा करनी।

अब इस सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तको के विचार और बाते सुनिए। सिद्धान्त रहस्य में लिखा है—

"गुरु को तन, मन, धन अर्पण करना। ये वस्तु समर्पण करने से ब्रह्मरूप हो जाती है। और उन वस्तुओं के उपभोग से फिर ५ प्रकार का दोष नहीं लगता।"

"सढ़सठ अपराध" नाम की पुस्तक में लिखा है—

१—वैष्णव होकर जो अवैष्णव को सम्मान करे, तो तीन जन्म तक चमार बने।

२—जो कोई गुरु औरभगवान् मे भेद रखे, वह पत्नी हो।

३—जो गुरु की आज्ञा उल्लंघन करे। वह असिपात्र नर्क में जाय, और उसकी समस्त सेवा नष्ट हो।

४—जो अपने गुरुकी गुप्त बात जाहिर करे, वह तीन जन्म तक कुत्ता हो।

अष्टाक्षर टीका में लिखा है—देखो श्री गोसाईं जी कैसे हैं। उन्हे किसी वस्तु की इच्छा नहीं। उन्हें कुछ गर्ज नहीं। उनकी सर्व इच्छा पूर्ण हुई है। वे सब गुणों से भरपूर हैं। वे स्वयं ईश्वर हैं। सब अवतारो मे मुख्य हैं। करोड़ो कामदेवो के समान सुन्दर हैं। सद्गुणों से परिपूर्ण और रसिकशिरोमणि हैं। भक्तों की मनोकामना पूर्ण करनेवाले हैं। करोड़ो जगत मे उनकी कीर्ति व्याप्त है। ......ब्रह्मा, शिव, इन्द्र उनकी स्तुति करते हैं।

'गुरु सेवा' पुस्तक मे लिखा है—

" ...इस लिये ईश्वर और गुरु की सेवा जरूर करनी चाहिए। जो मनुष्य ईश्वर की सेवा करे तो 'व्यापी' वैकुण्ठ में जाय—पर वही—जो गुरु की सेवा भी ईश्वर की तरह करे। .....पराई वस्तु भोगने का दोष तो इस सृष्टि को लगता है। ईश्वर के लिये तो कुछ पराया है ही नहीं। इस लिये व्यभिचार का दोष ईश्वर ने सृष्टि को ही दिया है। अज्ञानी (?) कहते हैं 'कि जो कोई पुत्री पिता से कहे कि मैं तुम्हारी स्त्री हूँ' इसमे कितनी अनीति है। इस लिये ईश्वर के साथ जार भाव की प्रीति रहने वाले कितने अधर्मी है। इसमे यह बात सोचने योग्य है कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के साथ जार भाव की प्रीति की थी, क्या उन्होंने अधर्माचरण किया ? तथा सृष्टि के साथ सृष्टि की स्त्रियाँ पार्वती, सीता आदि को महादेव और रामचन्द्र ने विवाहा, तथा श्रीकृष्ण ने १६ हजार गोपियों को व्याहा (?) यह भी क्या अधर्म था ? यह बात भी उन मूरखो (?) के कहने से सिद्ध होगी। जो केवल पिता पुत्र का भाव ही ईश्वर से हो तो श्रीकृष्ण इन कन्याओ को क्यों व्याहते (?) पर ईश्वर में तो सब भाव हैं। ...वह अपनी आत्मा (?) के साथ ही रमण करता है—उसे कुछ दोष नहीं। अज्ञानी (?) लोगों को शास्त्र विरुद्ध बात समझा कर लोग भ्रम में डालते है, जो जार भाव की प्रीति ईश्वर के साथ रखने मे अधर्म होता हो तो, पूर्ण पुरुषोत्तम वेद को जार भाव रखने (?) का वरदान ही नहीं देते।"

कुछ दिन पूर्व बम्बई में इस सम्प्रदाय के विरुद्ध बड़ा भारी

आन्दोलन मचा था, और वहां के प्रमुख पत्रों में इस समुदाय के व्यभिचार की भारी निन्दा की गई थी । जिस पर वहां के बड़े मन्दिर के महन्त ने ५० हज़ार रु० का मान हानि का दावा वहां के कुछ पत्र वालों पर कर दिया था, इस मुकदमे की खूब धूम रही थी और गुसांईजी की खूब छीछा लेदर हुई थी । सन् १९१८ मे हमने जब व्यभिचार, नामक पुस्तक लिखा और उसमे हम ने धार्मिक व्यभिचारों की उन सब बातो का उल्लेख किया जिनका वर्णन इस अध्याय मे किया गया है—साथ ही उस मुकदमें की कार्यवाही के उस समय के पत्रो के उद्धरण हम ने दिये थे, जिस पर बम्बई मन्दिर के महन्त ने प्रथम तो हमे मुकदमा चलाने की धमकी दी थी, पीछे उक्त पुस्तक का कापी राइट ख़रीद कर नष्ट कर देने की चेष्टा की थी ।

कुछ दिन हुए स्वामी ब्लाकटानन्द ने जो प्रथम इसी सम्प्रदाय के थे—इस सम्प्रदाय की पोल खोलते हुए ३ नाटक लिखे थे । जो लगभग २० वर्ष पूर्व हमने देखे थे, उस में भी बहुत सी बातों का भण्डा फोड़ किया गया था ।

नाथद्वारा इस सम्प्रदाय का बड़ा भारी अड्डा है । और इस की सम्पत्ति भी करोड़ों रु० की है । हाल ही मे वहां के भावी अधिकारी महन्त दामोदर लाल ने एक वेश्या से विवाह करके देश मे काफी हलचल मचा दी है, महन्त दामोदर लाल ने इस कुकर्म को धर्म क्रान्ति के विचार से किया हुआ प्रमाणित करने की चेष्टा की थी—पर हमने स्वयं नाथद्वारे जाकर उनके धर्मशून्य व्यभिचारों

की अनगिनत कहानियां और उनके कुत्सित जीवन की घृणास्पद बातें सब स्वयं सुनी। और जब उनसे कहा कि आप इन आरोपो का क्या उत्तर देते हैं तो उन्होंने निर्लज्जता पूर्वक कहा—इस मे हमारा क्या दोष है, यह तो हमारे सम्प्रदाय में होता ही है, आप सम्प्रदाय में संशोधन कीजिए तब ये बुराइयां दूर होंगी ।

पुराणो मे देवता और ऋषियों के व्यभिचारों को पवित्र और निर्दोष रूप दिया गया है, विष्णु ने वृन्दा के साथ उसके पति का रूप धरके व्यभिचार किया, इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता से गौतम की पत्नी अहल्या के साथ व्यभिचार किया, अनेक देवताओं ने कुमारी अवस्था में कुन्ती से व्यभिचार किया इसी प्रकार विश्वामित्र ने मेनका से, पराशर ने सत्यवती से, यहां तक कि पशुओं तक से व्यभिचार करने के घृणास्पद उदाहरण हमे देखने को मिलते हैं। श्री कृष्ण को एक आदर्श व्यभिचारी के रूपमे हिन्दुओ ने उपस्थित किया है । इन सब बातों से हिन्दू समाज की भावना इस कदर गन्दी होगई है कि कोई कवि, लेखक या नाट्य-कार चाहे भी जितनी अश्लील रचना करे, या चेष्टा करे यदि उस में राधा या कृष्ण का नाम आ जाता है तो वह प्रायः क्षमा के काबिल मानी जाती है। और निर्दोष तो वह है ही ।

कैसे शर्म की बात है कि मनुष्य अपनी पाप वृत्तियों और कुत्सित भावनाओं को धर्म की आड़ लेकर पूरी करने मे अपना बड़ा भारी कौशल समझता है। कभी किसी ने यह नहीं विचार

किया कि राधा वास्तव मे श्री कृष्ण की पत्नी भी न थी, वह पर स्त्री थी, इसके सिवा श्री कृष्ण के अपनी पत्नियां भी थीं। महाभारत में हमें इसका कुछ भी उदाहरण नहीं मिलता। परन्तु हिन्दुओं की मनोवृत्तियां इतनी गन्दी हो गई हैं कि वे कृष्ण के व्यभिचार की लीलाऐं बड़े मनोयोग से अभी अभिनय करते हैं।

कुछ दिन पूर्व कलकत्ते के गोबिन्द भवन नामक मारवाड़ियों के एक भक्ति आश्रम के एक पहुॅचे हुए भक्त हीरालाल के पाप का घड़ा बीच बाज़ार फूटा था। और यह प्रमाणित होगया था कि इस नराधम ने सैकड़ो ही भले घर की बहू बेटियों से उस मन्दिर मे व्यभिचार किया है। यह उस जाति की बेग़ैरती का नमूना था कि उस भयानक अपमान को वे लोग चुपचाप पी गए। पर इस व्यभिचार की जड़ मे वह कुत्सित भावना है जो धर्म व्यभिचार सम्बन्धी साहित्य के मनन से स्त्री पुरुषो के मन पर होती है। यह व्यक्ति अपने को कृष्ण और स्त्रियों को गोपी कह कर उनकी वृत्तियों को अवसर पाते ही चलित करता था. और फिर उन्हें पतित करता था। स्त्रियां स्वभाव ही से चलित चित्त तो होती ही हैं। शीघ्र ही बहक जातीं। फिर इस पापिष्ट ने कुटनियां भी बहुत सी लगा रखीं थीं। जब चांद के मारवाड़ी अंक का हम ने सम्पादन किया तो इस धर्म सांड के चित्र को प्राप्त करने में हमें बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा—अन्त में एक एक उच्च कुल की महिला के गले में पड़े हुए लाकेट से वह चित्र हमें बड़ी कठिनाई से मिला—और उस महिला ने उसका नाम न प्रकाशित कर

ने की हमें शपथ वद्ध किया। यदि पाठक आज्ञा दें तो मैं यह कहना चाहता हूं कि यह पतित आदमी अब भी ब्रह्म निष्ठ समझा जाता है, और अब भी कुछ स्त्रियों की उसके प्रति कृष्ण भावना और जार सम्बन्ध है, यह मारवाड़ी समाज की पतित नैतिक स्थिति के कारण ही हैं।

प्राय: ब्राह्मण लोग पूजा पाठ का ढोंग करने नित्य ही सद् गृहस्थो में जाते रहते हैं। खास कर मारवाड़ी परिवारों में। स्त्रियां इन से पर्दा भी नही करतीं। ये लोग खूब चुस्त, चालाक, चंट, लुच्चे होते हैं। हंस २ कर स्त्रियों से बाते करते, उनका हाथ देखते, भविष्य वताते और इस वहाने उनके गुप्त भावो को जान अपना उल्लू साधते हैं। ऐसे जनेऊधारी अनेक सांडों को हम जानते हैं। पीछे वही पाजी इस काम की दलाली भी करने लगते हैं। और दूसरो के सन्देश और संकेत पहुंचाया करते हैं।

मन्दिर व्यभिचार की प्रवृत्ति के वड़े भारी केन्द्र हैं। कुछ दिन पूर्व दिल्ली के एक मन्दिर का रहस्योद्घाटन हुआ था। मन्दिर में प्रवेश करने के द्वार के पास एक स्थान नियत है जहां जाने वालो के जूते उतार कर रख लिये जाते हैं। इस काम पर स्वेच्छा से एक युवक ने अपने आपको पेश किया। वह प्रत्येक आगन्तुक के जूते लेकर रखता, और चलती वार देता था। वहुत सी युवतियां भी मन्दिर में आती थीं। जव से असहयोग आन्दोलन चला और पंजावी संस्कृति दिल्ली में मिली, दिल्ली मे निर्भय विचरने वाली युवतियों की काफी भीड़ होगई है। सायंकाल को चांदनी

चौक में जिसका जी हो आकर देखले । प्राय: युवतियां बेधड़क खोंमचे वाले की दुकानों के सामने स्टूलों पर बैठ कर पत्ते चाटा करती हैं। या 'हर माल साढ़े तीन आने' की दुकानों पर घन्टों खड़ी सौदा पटाया करती हैं। इन मे बहुत सी उच्च कुल की लड़कियां होती हैं। अस्तु ! वह युवक यह चालाकी करता कि जिस युवती को वह पसन्द करता उसके जूते मे ५) का नोट रख देता जब वह स्वीकार हो जाता तो सौदा पट जाता—नहीं तो अकस्मात् की बात कह दी जाती।

एक महा पुरुष अपना नया तजुर्बा सुनाने लगे—कि मैं तो यमुना जी के रास्ते पर जहां.. .बगीची है जा डटता हूँ । वहां से नित्य ही हजारों स्त्रियां गुजरती हैं । जिसे पसन्द किया ५) का नोट गिरा दिया, यदि उसने उठा कर चुप चाप रख लिया तो संकेत करके ज़रा अलग किया और सब बातें तै करलीं—नहीं तो अपना नोट उठाया और दूसरा शिकार देखा ।

मन्दिरों से स्त्रियों का उड़ाया जाना, उन पर बलात्कार करना नई बात नहीं। नित्य के काम हैं। और इनके मूल में भी वही धर्म व्यभिचार की छाप है, जो ऐसे कर्मों की ओर विचार करने को मनुष्य को खींचता है ।

सातवां अध्याय

—++✠++—

अपराध

हत्या, व्यभिचार और दूसरे कार्य जिन का जिक्र हमने पिछले अध्यायों में किया है अपराध ही हैं। परन्तु इस अध्याय में हम इन से भिन्न अपराधों की चर्चा किया चाहते हैं कि जो धर्म के नाम पर प्राय: होते रहते हैं।

इन में सब से प्रथम हम घरों में आग लगाने की बात कहेंगे। प्राय: ज्योतिषी और स्याने नामधारी भण्ड पाखण्डी लोग स्त्रियों को फुसला कर यह अपराध कराते हैं। स्त्रियों को सन्तान न होने पर बड़ी चिन्ता हो जाती है और प्राय: देखा गया है इस के लिये वे उचित अनुचित सभी उपायों को काम में लाते रहे हैं। इस प्रकार के अपराधों की भित्ति भी धार्मिक अन्धविश्वास ही है। जिला मुजफ्फरनगर और सहारनपुर के इलाकों में प्राय: स्याने लोग यही नुसखा बताया करते हैं और बहुधा इन जिलों के देहातों में ऐसे काण्ड हुआ करते हैं।

सहारनपुर के ज़िले के एक गाँव में एक स्त्री के बच्चा नहीं होता था। स्त्री अग्रवाल वैश्य जाति की थी और सम्पन्न घर की थी। उसने स्याने को बुलाया, उसने हिसाब किताब देख भाल कर कहा किसी के छप्पर में आग लगा दे तो देवता प्रसन्न होकर पुत्र होजायगा। उसने एक दिन अवसर पाकर दुपहरी में एक ग़रीब के झोंपड़े में आग लगा दी जिस ने आधा गाँव भस्म कर दिया। कई पशु और आदमी भी जल गये।

कुछ दिन पूर्व बुलन्दशहर की कोर्ट में एक नीच जाति की स्त्री ऐसे ही अपराध में गिरफ्तार की गई थी उसने एक स्याने के कहने से छः घरों में निरन्तर आग लगाई अन्त मे पकड़ी गई और उसे दण्ड दिया गया।

एक इसी प्रकार की आग की घटना अनूपशहर के पास हम ने स्वयं देखी थी कि जिस से सारा गाँव भस्म हो गया था उस में ५ गायें, २ बैल, ६ पशुओ के बच्चे, २ स्त्रियाँ तथा १ बालक जल मरा था। अन्य नुकसान की गणना पृथक्।

बच्चों की चुपचाप हत्यायें भी प्रायः ऐसे मामलों में होती रहती हैं।

ज़िला मुज़फ्फरनगर के एक कस्बे मे कुछ दिन पूर्व एक रोमाञ्चकारी घटना हो गई थी। वहाँ के एक सम्पन्न प्रतिष्ठित जैन परिवार में सन्तान नहीं होती थी। किसी स्याने ने स्त्री को बता दिया कि यदि वह छः खूनों में स्नान करे तो उसे पुत्र होगा। वह स्त्री और उसका पति श्वसुर आदि पूरा कुटुम्ब इस भयानक

कार्य के लिये तैयार हो गया। उनका एक नौकर कम्बो जाति का था उसका छः वर्ष का एक पुत्र था। वह पाँच सौ रुपये लेकर अपने पुत्र को स्वयं मारने को तैयार हो गया। नियत समय पर घर के सब व्यक्ति एकत्रित हुए। लड़के के ज़ालिम बाप ने साग काटने के दरात से उसकी कर्दन काटना शुरू किया। और उस का खून निकाला गया। इस के बाद वह पिशाच उसकी लाश को जङ्गल में दफ़ना आया। परन्तु इस भयानक काम से उसे जाड़ा बुख़ार जैसा चढ़ आया और वह थर थर कांपता बालक को दफ़ना कर एक डाक्टर साहेब के पास गया और दवा मांगी। डाक्टर ने उसकी चेष्टाओं से सन्देह किया कि इस ने कोई काण्ड किया है। उस ने प्रथम तो कहा कि मेरा लड़का मर गया फिर सब बातें बयान कर दी। पुलिस में ख़बर की गई और लड़के का बाप, स्त्री, उसका पति आदि कई आदमियों का चालान हुआ। स्याने को भी पुलिस ने पकड़ा था। पर उसे इधर उधर के लोग सिफारिश करके छुड़ा लाये और वह नीच इस केस से बिलकुल ही बच गया। सेशन में केस चला। वहाँ से दो को फाँसी एक को काला पानी की सजा हुई। अपील मे सब छूट गये सिर्फ उस बालक के पिशाच पिता को कालापानी हुआ।

ज़िले मेरठ में एक स्त्री अदालत में इस अपराध में लाई गई थी कि उसने एक ३ साल की बच्ची को ज़िन्दा गाड़ दिया था। उसे ज्योतिषी ने यह बता दिया था कि ऐसा करने से उसके बच्चे जो हो हो कर मर जाते थे अब न मरेंगे।

कुछ पेशेवर ठग आमतौर से साधुओं का वेश धरे घूमा करते हैं। जो धर्म पाखण्ड के नाम पर बड़ी बड़ी कारवाइयाँ कर गुजरते हैं ।

एक क़स्बे मे एक सर्राफ़ के पास दो साधू आए । सर्राफ साधुओं का बड़ा भक्त था। साधुओं की उसने खूब सेवा सुश्रूषा की, साधुओं ने कहा—बच्चा हम तुम पर महाप्रसन्न हैं। तू जितना हो सके सोना लेआ हम दूना बना देंगे। सर्राफ ने कहा—महाराज, पहिले चमत्कार दिखाइये । उन्होंने एक तोला सोना लेकर आग में रख दिया। उसमे एक तोला तांबा रख दिया । सर्राफ तो उनकी सेवा चाकरी में लगा और साधुओं ने ताम्बे के स्थान पर चुपके से सफ़ाई से १ तोला सोना रख दिया। जब गलजाने पर निकाला तो दो तोला सोना था । लाला जी लोटन कबूतर हो गये और तुरन्त साठ तोले सोना साधुओं के सामने ला धरा। साधुओं ने बराबर तांबा मिला उसे आग में रख दिया । और सफाई से सोना निकाल लिया । इस के बाद निश्चिन्ताई से लाला से कहा—बच्चा, सुलफा और रबड़ी हमारे वास्ते लाओ । लाला इस काम मे लगे और साधु चुपचाप चम्पत हुए ।

एक साधु महाराज हाथ से धातु नहीं छूते थे, परन्तु सोना बना दिया करते थे। उनके पास कोई भस्म थी उसे चुटकी भर कर तांबे पर डाला और तांबा सोना बना। एक बार एक सेठ जी चक्कर मे आ गये। महीनों सेवा की और अन्त मे साधु को प्रसन्न किया। उन्होंने वचन दिया हम तुझे सोना बना देंगे ।

उन्होंने उसकी स्त्री के गहने मंगवा लिये और अवसर पा चलते हुए। अन्त मे पकड़े गये ।

एक साधु ने एक हलवाई भक्त से एक चिलम तम्बाकू मांग कर उसी के सामने भर कर पिया। कुछ देर वैठ चिलम वहीं उलट कर चल दिये। हलवाई ने देखा राख में सोना चम चमा रहा है। दौड़े और दण्डवत प्रणाम कर बाबा को ढूढ लाए। महीनो सेवा की—टाल टूल करते रहे अन्त में लाला का २००)रु० का माल हथिया कर चम्पत हुए ।

दो तीन साल पूर्व दिल्ली मे सब्जी मण्डी में एक वैश्य व्यापारी ने दूसरी शादी की थी। परन्तु २।३ वर्ष बीतने पर भी उस के सन्तान नहीं हुई थी, उसे किसी मुसलमान स्याने ने बता दिया कि किसी बच्चे के खून से स्नान करले तो बच्चा होजायगा। उसने अपनी जिठानी के लड़के को मार डाला और घर मे ही उसे गाड़ दिया, पीछे बात खुल गई और मामला पुलिस में गया। स्त्री को सजा मिली।

सिकन्दराबाद में एक जैन स्त्री से बच्चे हो हो कर मर जाया करते थे । किसी स्याने ने कहा—तुझे मसान लग गया है, इस बार बच्चा हो जाय तो उसे ज़मीन में गाड़ देना, फिर सब बच्चे जिन्दा रहेंगे। उसने पैदा होते ही अपना बच्चा जमीन मे गाड़ दिया । दैवयोग से उसी समय एक कुम्हार वहाँ मिट्टी खोदने गया और बचा बरामद किया, मामला अदालत में गया और बड़ी दौड़ धूप से स्त्रो रिहा कराई गई ।

अनूप शहर में एक स्त्री के सन्तान नहीं होती थी। किसी स्याने ने कहा कि किसी आदमी का खून चाट ले, उस ने किसी पड़ौसी के बच्चे का हाथ काट खाया और खून पी गई। बहुत लोग इकट्ठे हुए, मगर मामला रफा दफा हो गया।

कुछ दिन पूर्व दिल्ली में एक भारी मामला होगया था, एक प्रसिद्ध वैद्यराज के पड़ोस में एक धनी लाला जी रहते थे। उनकी सुन्दरी स्त्री पर इनकी दृष्टि थी। वैद्य जी की स्त्री कुटनी का काम करती थी, वह दूसरी स्त्रियो को फँसा २ कर उनके पास ले आती थी। इस स्त्री को भी उसने फांसा। अतः वैद्य जी और इस स्त्री ने मिल कर सेठ जी को ठगने का षड्यन्त्र रचा। सेठ जी बीमार रहते थे। एक बार उन्हें देखने को वैद्य जी बुलाये गये। एक आदमी पहिले ही से ठीक कर लिया गया था—वह थोड़ी ही देर बाद वहां पहुंच गया। वैद्य जी ने अनजान की तरह पूंछा-तुम कौन हो; और क्या चाहते हो? उसने कहा महाराज, मैं बड़ा दुखी था—मेरा रोग किसी भांति आराम ही न होता था। अन्त में मैंने आत्मघात करने की सोची—और एक दिन बहुत सवेरे मैं उठ कर लालक़िले की फसील पर चढ़ गया, और चाहा कि कूद कर जान देदूँ, कि भेरों जी प्रकट हुऐ और कहा—ठहर, जान मत दे, यह औषध ले, इस से आधी खा, आराम हो जायगा। मैंने वह आधी दवा खाई और खाते ही अच्छा हो गया।

वैद्य जी ने चमत्कृत होकर कहा—वह आधी दवा कहां

है ? तब उसने वह दवा वैद्य जी को दी—उन्होंने वह गिरादी। इस पर उसने बिगड़ कर कहा—वाह, यह आपने क्या किया ? दवा—गिरा दी। तब वैद्यजी ने कहा, चिन्ता न करो, चलो—फिर भैरोंजीका आवाहन करे और औषध प्राप्त करें।

यह कह कर दोनो गये। लाला जी बड़े प्रभावित हुए। उनकी कुल्टा स्त्री ने उन पर और भी रंग चढ़ा दिया था। दूसरे दिन जब वैद्य जी फिर गये तो लाला ने बड़े उत्सुक होकर पूंछा—"कहो कल क्या देखा ?"

उन्होंने कहा—भैरों ने साक्षात् दर्शन दिये, इस आदमी पर भैरों बाबा प्रसन्न हैं। और यह चाहे जिसको दर्शन करा सकता है।

लाला ने कहा—तब हमारा भी संकट काटना चाहिए। गरज उन दोनो पाखण्डियों ने लाला को उल्लू बना कर उस से १०।१२ हज़ार रु० झांसा। उनकी पत्नी इस काम में उनकी सहायक हुई। कई बार उन्होंने भैरों के दर्शन लाला जी को भी कराए। कुछ दिन व्यतीत होने पर भी जब लाला का रोग दूर न हुआ—उल्टा बढ़ता ही गया तो उन्होंने घबराकर कहा—अब क्या करना होगा। वैद्य जी ने अनुष्ठान के लिये ५०० रुपये और मांगे।

लाला के कोई सम्बन्धी आर्य समाजी थे। उन्हे इस बात की कुछ सन्धि लग गई कि ये धूर्त लाला को ठग रहे हैं। उन्होंने पुलिस में इसकी इत्तला की—पुलिसने ५०० रु० के नोटों पर निशान करके उन्हें दिये कि जाकर वैद्य जी को दे दो। उन्होंने वैद्य जी को

लाला के घर बुलाया और लाला को जल्द अच्छा करने का वचन ले कर वे नोट उन्हें दे दिये। वैद्य जी उन्हे जेब मे डाल ज्यों ही बाहर निकले कि पुलिस ने उन्हे धर लिया। मुकदमा चला। और वैद्य जी दिल्ली छोड़ ऐसे गायब हुए कि जैसे गधे के सिर से सींग। पुलिस देर तक उनका वारंट लिये फिरती रही।

बम्बई में एक सम्पन्न मारवाड़ी व्यक्ति एक स्त्री को मेरे पास लाया और कहा कि यह मेरी साली है। इसे बायगोले की बीमारी है। उस स्त्री ने बहुत कहने सुनने पर भी पेट नहीं देखने दिया, केवल नाड़ी देखकर ही दवा देने का अनुरोध करती रही। लाचार उसका बयान सुनकर ही औषधि व्यवस्था कर दी गई। कुछ दिन तक वह नित्य आता रहा और तेज से तेज दवा देने का अनुरोध करता गया। फिर वह एकाएक नहीं आया। दो तीन दिन बाद हमें मालूम हुआ कि वह पकड़ा गया है। उसी साली को गर्भ था। बच्चा पैदा होने पर उसके सिर मे कील ठोककर उसे घड़े मे रखकर गटर में डाल दिया। भंगी ने देखकर पुलिस में इत्तला की। पुलिस को देखते ही वे लोग घर से नासिक भाग गये। मार्ग मे स्त्री को सन्निपात होगया। और वह पुलिस के सामने बयान देकर मर गई। वह व्यक्ति फौजदारी सुपुर्द हुआ।

बहुधा साधु लोग भले घर की बहू बेटियों को ले भागते हैं। आम तौर पर यह दोहा प्रसिद्ध है—

ना संता ब्याहन चढ़ें, ना सिर बांधें मौर।
करी कराई ले भगें, ये सन्तों के तौर॥

एक साधु एक सद् गृहस्थ के यहाँ आता जाता था। घर के लोग उसकी बहुत आवभगत करते थे। घर में एक जवान क्वारी लड़की थी। एक जवान आवारागर्द उसका भाई था। इस भाई को सोना बनाने की विधि सिखाने का उसने झांसा दिया और इसे इस बात पर राजी कर लिया कि वह उस पापी के पास अपनी बहिन को फुसलाकर ले आवे। लड़के ने ऐसा ही किया। पीछे जब लड़की के व्याह की चर्चा उठी तो साधु ने कहा—यह लड़की हमारे साथ बिगड़ चुकी है, इसका व्याह नहीं हो सकता। लोग बदनामी के डर से बहुत डरे, अन्त में भाई की सहायता से वह उसे लेकर भाग गया और अन्त में पकड़ा गया।

पशुओं से स्त्रियों का मैथुन करने की आज्ञा भी एक अद्भुत और भयानक धर्म की आज्ञा है। अश्वमेध यज्ञ में यजमान की स्त्री को घोड़े से मैथुन कराना पड़ता था, कहा जाता है कि एक राजा की रानी इस भयानक कर्म करने से मर गई थी। बहुधा साधु महात्माओं को इस प्रकार के कुकर्म करते देखा जाता है।

यहाँ हम विस्तार भय से अधिक न लिखकर इस विषय को समाप्त करते हैं।

आठवां अध्याय

कुरीति और रूढ़ियां

गुलाम और नामर्द क़ौमें हमेशा कुरीतियो और रूढ़ियों की दास हुआ करती हैं। हिन्दू जाति में भी इन दोनों चीजों की कमी नहीं। ये दोनों ही बातें अन्य जङ्गली और पतित जातियों के समान हिन्दुओ में धर्म विश्वास पर ही निर्भर हैं।

प्रत्येक जाति के जीवन का आधार प्रगति शीलता है, जिस में प्रगतिशीलता नहीं—वह जाति जिन्दा नहीं रह सकती। हिन्दू जाति की प्रगति कब की नष्ट हो गई है। अब वह जाति केवल मौत की सांस ले रही है। सनातन धर्म हमारी आत्मा में रम गया है और हम उसी गढ़े का सड़ा हुआ जहरीला पानी पी पी कर मर रहे हैं जिसमे नये जल के आनेका कोई सुभीता ही नहीं है। यह सनातन धर्मदो हज़ार वर्ष से पुराना नही। पुराना होने पर भी मान्य नही।

मैं इस सिद्धान्त को मानने से इन्कार करता हूँ कि जो कुछ पुराना है वह सब शुभ और माननीय है। मेरा कहना यह है कि जो कुछ हमारे लिये बुद्धि गम्य और शुभ है, वही हमारे लिये माननीय है। और धर्म तथा जातियाँ तो वही जिन्दा रह सकती हैं— जो समय के अनुकूल अपनी प्रगति को तत्कालीन बनाये रक्खें।

हमारी सब से भयानक कुरीति हिंदुओं की विवाह पद्धति है। इस प्रथा की आड़ मे अनगिनत पाप, पाखण्ड, अपराध और अन्याय धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं।

विवाह का मूल उद्देश्य स्त्री पुरुष का परस्पर आत्म भावना का नैसर्गिक विनिमय है। जिस के आधार पर प्रकृत्ति का प्रवाह चल सकता है। स्वभाव ही से स्त्री पुरुष दोनों मिल कर एक सत्त्व बनता है। अतः समय पर उपयुक्त स्त्री पुरुषों का परस्पर सहयुक्त होना आवश्यक है।

परन्तु यह सहयोग वज्ञानिक भित्ती पर है। इसका सब से मोटा उदाहरण तो यही है कि सपिण्ड और सगोत्र स्त्री पुरुष संयुक्त नहीं हो सकते। यह बहुत गम्भीर और वैज्ञानिक बात है कि भिन्न रक्त और वंश को मिला कर सन्ताने उत्पन्न की जाये। परन्तु वह विज्ञान तो प्रायः नष्ट कर दिया गया है।

विवाह की प्रथा मे सब से ज्यादा वेहूदा और अधर्म की परिपाटी 'कन्यादान' की परिपाटी है। पिता कन्या को वर के लिए दान देता है। हिन्दू विवाह मे यह सर्वाधिक प्रधान बात है। मै यह कहता हूँ कि कन्या अपने पिता की मेज, कुर्सी या कलम,

दावात नहीं, उसकी खरीदी हुई सम्पत्ति भी नहीं, मकान, दुकान या जायदाद भी नहीं, सोना चाँदी या अन्न भी नहीं—फिर उसे कन्या को दान करने का किस ने अधिकार दिया ? क्या कन्या के कोई आत्मा नहीं ? वह जीवित नहीं ? उसे अपने लाभ हानि पर, जीवन की समस्या पर विचार करने का ज़रा भी अधिकार नहीं ? शोक तो यह है कि आर्य समाज की पुत्रियाँ भी विवाह के अवसरों पर पिताओं द्वारा दान की जाती हैं । आर्य समाज अपने को वैदिक धर्मी होने की डींग तो हाँकता है पर मैं डंके की चोट उसे चैलेंज देता हूँ कि वह साबित करे कि कन्या दान का विधान कौन से वेद मन्त्र में है ? वेद में तो साफ़ ये शब्द मिलते हैं कि :—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'

सनातन धर्मियों के विवाह की अपेक्षा मुझे आर्य समाज के विवाह ज्यादा भ्रष्ट और बेहूदे प्रतीत होते हैं । और मैं उन्हें कदापि नहीं सहन कर सकता । सनातन धर्म की कन्याऐं—बालक, अभागिनी, अबोध, मूर्खा, और पिता की सम्पति होती हैं । पिता वर का स्वागत करता है, आसन देता है, गोदान करता है, मधुपर्क देता है, पाद्य और आचमनीय देता है तब कन्या को भी दे देता है । इस के बाद वर वधू सप्तपाद आदि भी करते हैं । इन सब बातों में जैसा भी पातक या अनीति हो वह क्रमबद्ध तो है । पर आर्य समाज की पुत्रिया युवती हैं, पढ़ी लिखी हैं, विवाह के प्रश्नो पर उन्हे विचार करने का अवसर दिया जाता है, बहुधा कन्या को भावी वर मे

और पसन्द करने का अवसर भी दिया जाता है। विवाह की वेदी पर कन्या स्वयं वर का स्वागत करती और अर्घ्यपाद्य आदि देती हैं। इसके बाद पिता कन्या दान देता हैं। और तब प्रतिज्ञाऐं या सप्तपदी की क्रियाऐं की जाती हैं। अजी जनाब, मैं यह पूंछता हूं, जब कन्या दान ही कर दी तब प्रतिज्ञाओं का क्या महत्व है? यदि वर वधू प्रतिज्ञाओं से इन्कार कर दे तो क्या कन्यादान वापस हो सकता है? आर्य समाज के पण्डित गण वेद मन्त्रों की व्याख्या करके वर वधू को प्रतिज्ञाओं के अर्थ समझाने की चेष्टा करते हैं। सनातन धर्मी तो एक रस्म पूरी कर के छुट्टी लेते हैं। इसी लिये मैं कहता हूं कि आर्य समाज की विवाह पद्धति ज्यादा आपत्ति जनक है।

यदि मैं यह कहूं कि मनुस्मृति जो वास्तव मे मनु की बनाई नहीं है। इस भयानक अनर्थ की जड़ है, तो बेजान साधारणतया यह कहा जाता है कि स्मृतियां वेद के अनुकूल चलती हैं, पर विवाह के मामलों में इस स्मृति ने वेद के नियम के विरुद्ध ही नियम बनाये हैं। यह स्मृति ८ प्रकार के विवाहों को बयान करती है। प्रथम विवाह आर्ष है जिसमे कन्या का पिता अलंकृता कन्या को श्रेष्ठ वर को दान करता है। दूसरा विवाह ब्राह्म है जिस में पिता एक बैल का जोड़ा लेकर वर को कन्या देता है। तीसरा विवाह दैव है जिस में पुरोहित को दक्षिणा के तौर पर कन्या देदी जाती है। चौथा गन्धर्व है जिस मे वर कन्या चुपचाप पति पत्नी भाव से रहने लगते हैं। एक विवाह राक्षस है जिस मे रोती

कलपती बालिका को बल पूर्वक हरण करके ज़बर्दस्ती ले जाया जाता है।

इन नियमों में ग़ौर करने की बात यह है कि कन्या को अपना वर स्वयं चुनने का गन्धर्व विवाह को छोड़कर कहीं भी अधिकार नहीं दिया गया। गन्धर्व विवाह की बात हम पीछे करेंगे। प्रथम तो हम दैव विवाह पर ग़ौर किया चाहते हैं कि एक आदमी जो यज्ञ कराने आया है, उसे बहुत सी दान दक्षिणा की चीज़ें दी जाती हैं, उस में कन्या भी दी जा सकती है। यह केवल नियम ही नहीं, हम ऐसे उदाहरण दे सकते हैं। जिसमे राजाओं ने अपनी सुकुमारी राजपुत्रियाँ पुरोहितों को दे डाली हैं।

अच्छा, राक्षस विवाह को किस आधार पर विवाह माना जाता है? ज़बर्दस्ती, रोती, कलपती कन्या को बलपूर्वक हरण करके ले जाना अपराध है कि ब्याह? भीष्म जैसे ज्ञानी और महावीर ने यह अपराध किया था, वह काशीराज की तीन कुमारियों को ज़बर्दस्ती युद्ध करके छीन लाया था। न कन्या का पिता और न कन्या ही इसके अनुकूल थे। मैं जानना चाहता हूँ कि यदि भीष्म को ताज़ीरात दफा ३६६ के अनुसार मजिस्ट्रेट के सामने अभियुक्त बनाकर खड़ा किया जाय तो वे चाहे भी इस कर्म को धर्म की दुहाई दें वे सात वर्ष की सख्त सज़ा पाये विना नहीं रह सकते। और कोई भी आदमी न नैतिक दृष्टि से और न सामाजिक दृष्टि से किसी कन्या को इस प्रकार हरण कर सकता है, फिर यह कुकर्म विवाह तो हो ही नहीं सकता।

गान्धर्व विवाह का हमे प्राचीन इतिहास मे एक ही उदाहरण मिलता है, शकुन्तला और दुष्यन्त का। यह गान्धर्व विवाह कितना बेहूदा और नीच कर्म था इसका ज्ञान हमे इसी विवाह से मिल जाता है। हमे कालिदास की रसीली कवित्वमयी लच्छेदार बातों से कुछ सरोकार नही, हम असली कथा पर ग़ौर किया चाहते हैं।

दुष्यन्त जैसा श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा शिकार को जाता है। वहाँ कण्व के आश्रम मे पहुँचता है। कण्व वहाँ नहीं है, उनकी पोष्य पुत्री शकुन्तला है, वह उस युग के धर्म के अनुसार राजा का आतिथ्य करती है। राजा इस सुयोग से लाभ उठाकर बेचारी कुमारी बालिका को फ़ुसलाकर वही उसका कौमार्य नष्ट करके और बहुत से सब्ज़ बाग़ दिखाकर घर चल देता है। जब ऋषि आते हैं और उन्हे सब बाते मालूम होती हैं, वे यही निर्णय देते हैं कि इसे उसके यहाॅ पहुँचा आओ और जब वह वहाँ जाती है तो दुष्यन्त साधारण लम्पट की भाँति निर्लज्जता से कह देता है कि यह कौन है इसे मैं जानता भी नहीं। अन्त में वह माता के पास जाकर दिन काटती है, जिसे उसी की भाँति एक ऋषि भ्रष्ट कर चुका था, और जिसका फल वह ख़ुद थी, बहुत दिन बाद राजा को वृद्ध होने पर भी जब पुत्र नही होता तब वह उसे ख़ुशामद कर कराकर ले आता है।

यह असल कथा है। मेहमान का इस से ज्यादा नीच कर्म कौनसा हो सकता है कि वह जिसके घर में अतिथि बने उसी की कुमारी कन्या को उसकी ग़ैर हाज़िरी मे कुछ ही घण्टों में बहका

कर न केवल उसे विवाह पर राजी करें, प्रत्युत तुरन्त ही उसका कौमार्य भी नष्ट करदे । और फिर उसके पहिचानने से भी इन्कार करदे ।

द्रौपदी सीता और दमयन्ती आदि के स्वयंवरों की चर्चा भी हमें प्राचीन पुस्तकों मे मिलती हैं । परन्तु वे नाम मात्र के स्वयम्वर थे । सभी में पिता की एक शर्त थी, उसे पालन करके कोई भी वर उस कन्या को प्राप्त कर सकता था । यदि रावण और बाणासुर जनक के धनुष को चढ़ा पाते तो वे अवश्य ही सीता को प्राप्त करने के अधिकारी हो सकते थे । चाहे सीता उन्हें प्रेम न कर सकती ।

स्त्रियों की विना रुचि जाने, उन को अपने जीवन पर विचार करने का अवसर विना दिये पुरुषों का स्वेच्छा से उनका विवाह कर देना यह स्त्री जाति मात्र का घोर अपमान है । और इस कुकर्म ने हिन्दू जाति की स्त्रियों के सब सामाजिक अधिकार छीन लिये, उन्हें निरीह पशु के समान बना दिया । इसी कन्यादान की प्रथा के कारण पति की सम्पत्ति में उनका कुछ भी अधिकार नहीं । विधवा होने पर वे केवल रोटी कपड़ा पा सकती हैं, मानों वे घर की कोई बूढ़ी निकम्मी गाय भैंस हैं । संसार की किसी भी सभ्य देश की स्त्री विवाह होने पर हिन्दू स्त्री की भाँति बेबस नहीं हो जाती । इसका कारण यही है कि वह दान की हुई वस्तु है । और उसके प्राण आत्मा और शरीर पर उसके पति का पूर्णाधिकार है ।

बाल विवाह इस कुकर्म का दूसरा स्वरूप है। आज ढाई करोड़ विधवायें इस कुकर्म के फल स्वरूप हिन्दुओं की छाती पर बैठी ठण्ढी सांसे ले रही है। कोई ज़हर खाकर दुःख से छुटकारा पाती है, कोई भंगी, कहार, मुसलमान के साथ भागकर खानदान का नाम रोशन करती हैं।

कन्या विक्रय एक भयानक अपराध तो है ही वह भीषण पाप भी है, परन्तु इस अपराध और पाप की ज़िम्मेदारी उन बद-नसीब पशु प्रकृति पिताओ पर नहीं जो लोभ और स्वार्थ मे अन्धे होकर अभागिनी, अज्ञान बालिकाओ को बेच देते हैं इसके असली जिम्मेदार तो वे धर्म शास्त्र हैं जिन्होने बचपन की शादी को धर्म कर्म बताया, जिन्होंने रजस्वला कन्या को देखना नर्क का कारण बताया—जिन्होने कन्याओ को दान करने की चीज बनाया, जिन्होने पुत्रियो को समाज का अभिपाप-सन्तानो की निषिद्ध वस्तु ठहराया। यदि ये दूषित और लानत भेजने योग्य धर्म शास्त्र ऐसे बेहूदे विधान न करते तो आज पिता अभागिनी बालिकाओ को बेचने के लिये स्वाधीन न हो सकते थे। कन्याये भी मनुष्य के अधिकारों को प्राप्त करतीं, और अपने जीवन, भविष्य और लाभ हानि पर विचार करतीं।

आज लाखों कन्यायें बूढे खूसटो के अत्याचार का शिकार बनती हैं। दो एक रोमांचकारी आँखो देखी घटना हम यहाँ बयान करना आवश्यक समझते हैं। एक करोड़ पति सेठ ने जिन्हे दीवान बहादुर का ख़िताब था, ६५ वर्ष की अवस्था मे एक ११

वर्ष की लड़की से विवाह करने की ठानी। सुना गया कि लड़की बीकानेर राज्य भर में एक मात्र सुन्दरी बालिका है। कन्या को मृत्यु शैया पर हमने देखा था, उसमें तनिक भी अत्युक्ति न थी। कन्या की सगाई उसके पिता ने एक अन्य दुहेजुआ आदमी से साढ़े चार हज़ार रुपया लेकर करदी थी। परन्तु सेठ ने उसके ग्यारह हजार दाम लगा दिये। इस लिये सगाई सेठ को चढ़ा दी गई। इस पर वह व्यक्ति जिसे सगाई चढ़ गई थी, आया और पंचों से फ़रियाद करता फिरा परन्तु कोई भी पंच सेठ के विरुद्ध न कर सकता था। वह व्यक्ति हमारे पास आया और हमने उसे नुसखा बता दिया। हमने उसे सलाह दी कि अमुक मन्दिर में अन्न जल त्याग धरना देकर बैठ जाओ। ५०) पुजारी को चुका दो और कहदो जब तक मैं अन्न जल न करूं ठाकुर जी को भोग न लगाया जाय। यही किया गया और दोपहर तक नगर भर में अफवाह फैलगई कि आज ठाकुर जी के पट बन्द हैं दर्शन नहीं होते न भोग लगता है, उसका कारण यह कि एक फरियादी ने वहाँ धरना दिया है। ग़रज भीड़ की भीड़ आने लगी और पंचायत जुड़ी—फैसला यह हुआ कि उसके रुपये वापस दे दिए जायँ। सेठ ने पंचों को ग्यारह हजार की लागत की एक बग़ीची मय अहाते के पंचायत के नाम देकर यह फैसला ख़रीदा था। विवश वह रुपया ले घर में बैठ रहा। तब नगर के युवकों ने लड़की के मामा को बुलाकर उसे आगे कर दावा दायर किया। वह महायुद्ध के दिन थे। सेठ ने एक लाख के वार बौण्ड ख़रीद कर

अपने हक में फसला ले लिया। और तत्काल विवाह की तैयारी होने लगी। चीफ कमिश्नर पहाड़ पर थे, तार द्वारा अपील की गई, वहाँ से विवाह रोकने की आज्ञा भी आई—पर विवाह जंगल में एक वृक्ष के नीचे कर दिया गया।

बालिका विवाहित होने के ६ महीने बाद सेठ जी मर गये। उनकी मृत्यु के १ मास बाद वह प्रथमवार रजस्वला हुई और ३ मास बादएकाएक रात को २ बजे हमें बुलाया गया। देखा वह मर रही थी और उसे जहर दिया गया था। दूसरे दिन धूमधाम से उसका शव निकाला गया और उस पर अशर्फियाँ लुटाई गई।

यह एक उदाहरण है परन्तु हमारे पास एक से एक बढ़ कर हजारों उदाहरण हैं। इन बालिकाओं मे न तो प्रतिकार का ज्ञान है, न शक्ति। वे चुपचाप इस अत्याचार का शिकार बन जाती हैं। और इसका परिणाम हिन्दू जाति का सामूहिक नैतिक पतन होता है। ऐसी लड़कियाँ बहुधा नीच जाति वालों या मुसलमानों बदमाशों के साथ भाग जाती हैं जो इस प्रकार के मामलों की ताक मे रहते हैं।

मैं ऐसी अनेक छोटी छोटी रियासतों की रानियों को जानता हूँ कि जिन्हे उनके लम्पट रईस पतियो ने बुढ़ापे मे ब्याहा और जवानी में छोड़ मरे। और वे खुली व्यभिचारिणी और स्वेच्छाचारिणी की भाँति विचरण करती हैं*। एक बार एक युवक ने हमें बीस हजार रुपया भेंट करने चाहे थे यदि मैं उसकी माता

---

*ऐसी भयानक कहानियां 'देशी राज्यों में व्यभिचार' नामक पुस्तक में पढ़िये।

को जो उस समय मेरी चिकित्सा में थी, विष देकर मार डालता, और उसका कारण यह था कि वह युवक के मृत पिता की चौथी स्त्री थी। जो आयु में उस युवक की स्त्री से बहुत कम और एक मुनीम से खुल्लमखुल्ला फँसी थी, तथा लाखों रुपया उसे लुटा रही थी। एक रियासत में हमारे पुराने परिचित एक मित्र महाराज के प्राइवेट सेक्रेट्री थे, जो उनके मरने पर महारानी के भी प्राइवेट सेक्रेट्री रहे। कुछ दिन पूर्व हमें दैवयोग से उस स्टेट में जाने को अवसर हुआ। तब युवक राजकुमार अधिकार सम्पन्न हुए थे। चर्चा चलने पर उन्होंने क्रोध रोक के असमर्थ होकर कहा, यदि वह सूअर यहाँ आयगा तो मैं अपने हाथ से उसे गोली मार दूंगा।

वृद्ध विवाह संसार के सभी देशों मे होता है, परन्तु बराबर की स्त्रियों के साथ। पोती के समान बालिकाओं को इस प्रकार संसार की कोई भी सभ्य जाति कुर्बान नहीं करती।

इस कुप्रथा के कारण अनेक बूढ़े खूसट धन के लालच में गुणवती कन्यायें पा जाते हैं, और बेचारे दरिद्र युवक रह जाते हैं।

एक कामुक रईस ने सत्तर वर्ष की आयु में विवाह करने की इच्छा प्रकट की। और जब हमने उससे उसका कारण पूंछा तो कहा—हमारे मरने पर रोने वाला भी तो कोई चाहिये। इस पतित रईस की बातें सुनकर मिश्र के पुराने राजाओ का हमें स्मरण हो आया जो अपनी समाधियो मे जीवित स्त्रियों को दफ़नाया करते थे।

बाल पत्नियो के भयानक कष्टों को हमें देखने के बहुत अवसर मिले हैं। इस कुप्रथा से हमारा बहुत कुछ शारीरिक और मानसिक ह्रास हो रहा है। बड़ी उम्र के लोग जो अपना दूसरा और तीसरा विवाह करते हैं। उनकी पत्नियो की बड़ी दुर्दशा होती है। वे प्रायः पति संसर्ग से भागा करती हैं। और अन्त मे उनके साथ जो व्यवहार किया जाता है। उसे बलात्कार के सिवा कुछ कहा ही नही जा सकता।

एक चालीस वर्ष के पुरुष ने ग्यारह वर्ष की बालिको से शादी की थी। कुछ दिन बाद ही उसके गर्भ रह गया जो उसका आप्रेशन करके बच्चा निकाला गया। और वह लड़की सदा के लिये अपंग होगई।

एक रोमांचकारी घटना हमे मालूम है कि ग्यारह साल की लड़की का विवाह पैंतीस वर्ष के एक व्यक्ति से हुआ था। यह व्यक्ति प्रतिष्ठित और सम्पन्न था। उसने हठ पूर्वक बालिका को बुला लिया। उसकी माता ने विदा करने से पूर्व कृत्रिम रीति से उसके गर्भाशय को बड़ा करने की चेष्टा की। जिससे उसके शरीर से रक्त का प्रवाह जारी होगया। जब वह पति के पास गई और उसने सहवास किसी भी भाँति स्वीकार न किया तब क्रोध मे आकर उसने उसे तिमंजिले पर से सड़क पर फेक दिया। और वह कुछ देर बाद मर गई।

हाल में बंगाल के अन्तर्गत नोआखाली नामक स्थान से एक ऐसा लोमहर्षक समाचार आया है जिसने रात-दिन घटित

होनेवाली पैशाचिक घटनाओं से अभ्यस्त जनता को भी चकित कर दिया है। वहाँ की अदालत मे कमला नाम की चौदह वर्ष की लड़की ने अपनी करुण कहानी सुनाई है। लड़की का कहना है कि तीन-चार वर्ष पहिले हरिपदविश्वास नामक एक व्यक्ति के साथ उसका विवाह हुआ था। वह ससुराल ही में रहती थी। उसके पति के चार भाई और थे। वे सब अविवाहित थे। एक साल पहिले की बात है कि उसकी सास ने उससे अपने देवर ननीपद के साथ अवैध सहवास करने के लिये कहा। उसने स्वीकार नहीं किया। उसने वहुत हठ किया, पर वह न मानी। इसका फल यह हुआ कि सास-ससुर ने उसे मारना शुरू कर दिया ? पाशविक व्यवहार की भी कोई सीमा होती है ? कुछ भी हो, लड़की ने जब अपने पति से ये सब बातें कहीं तो वह क्रुद्ध हो अपने माता-पिता का साथ छोड़कर किसी दूसरे मकान में चला गया। पर फिर वापिस आकर उसके पति ने भी अपने माता-पिता की वात का समर्थन किया । तवसे उसका पति, सास, ससुर तथा देवर सबने मिलकर उसके ऊपर अत्याचार शुरू कर दिया। उसके हाथ-पाँव वाँधकर वे लोग उसे काँटेदार लकड़ी से पीटा करते थे, कभी-कभी पीठपर छुरी से मारते थे; कभी घर की छत से उसे नीचे लटकाकर उसके मुंह मे कपड़ा ठूंस दिया जाता था, ताकि रो न सके। एक दिन उसके देवर ननीपद के कहने पर उसकी सास न पिसी हुई मिर्च बल पूर्वक उसके गुप्त अंग के भीतर डालदी। असह्य वेदना से वह छटपटाने लगी। लगातार तीन दिन तक

उसे खाने को नहीं दिया गया। सास-ससुर जिस कमरे में सोते थे, ननीपद भी उसी में सोता था। लड़की स्वयं दूसरे विस्तर में सोती थी, ननी ने बल-पूर्वक उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा। इस समय उसकी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। जब वे लोग उसे पीटते तो वह रोती। उसका रोना सुनकर पड़ोस के सम्भ्रांत लोग आते; वे लोग उन्हे गालियाँ देकर निकाल देते। उसे केवल एक जून भात खाने को मिलता था; दाल, तरकारी वग़ैरा कुछ नहीं दिया जाता था। सरसों के कच्चे तेल के साथ वह भात खाती, एक दिन उसका देवर ननी लगातार कई घण्टो तक उसे पीटने के बाद उसके मुँह के भीतर कपड़ा ठूंस कर उसे पकड़ कर उसके बाप के मकान में डाल गया और भाग कर चला गया। इस के पहिले एक दिन उसकी सास तथा देवर ने खिड़की मे लगी हुई लोहे की छड़ के साथ एक रस्सी से उसका गला, हाथ और पाँव कस के बाँध दिये, उस ने अदालत को रस्सी के दाग दिखाये। लड़की ने अदालत में यह भी कहा कि दूसरे देवर भी उसे बीच-बीच में तङ्ग किया करते थे। घर का सब काम उसी को करना पड़ता था। सास उसे किसी काम मे बिलकुल सहायता नहीं देती थी, उसके ससुर का चरित्र अच्छा नही था; अक्सर रात को कुलटा स्त्रियाँ उसके पास आती थीं। उस ने कहा कि जवानी में उसकी सास का चरित्र भी अच्छा नहीं था—ऐसा उसने सुना है।

सर हरीसिंह गौड़ के सहवास बिल पर अब तक बड़ी भारी दिलचस्पी ली जाती रही है। इस क़ानून के अनुसार १६ वर्ष से कम आयु की विवाहिता पत्नी से भी सहवास न कर सकेगा। यदि ऋतुमती होने के बाद ही कम उम्र में लड़कियों के साथ सम्भोग किया जायगा तो उनकी सन्तान अवश्य ही कम-जोर होंगी, पर सनातनधर्मी ब्राह्मणों को कमज़ोर सन्तान उत्पन्न करने से कुछ हानि नहीं। उनकी सन्तान तो जन्मश्रेष्ठ ही ठहरीं इस लिये वे ऋतुकाल से पूर्व ही किसी सद्वंश की कन्या का पाणि-ग्रहण कर अपना और दस पूर्वजों तथा दस आगामी वंशजों का इस प्रकार इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर डालना चाहते है।

पाराशर स्मृति के सातवे अध्याय मे लिखा है कि लड़की के जो माता पिता या बड़े भाई बारह साल की आयु से प्रथम उसका विवाह नहीं कर देते वे नर्क को जाते हैं। जो ब्राह्मण इससे बड़ी आयु की कन्या से विवाह करे उसे जाति से बाहर निकाल देना चाहिये और इस काम के लिये उसे यह प्रायश्चित करना चाहिये कि वह तीन वर्ष तक भीख मांग कर जीवन निर्वाह करे।

विचारने की बात तो यह है कि मर्द ४० या ५० वर्ष की आयु होने पर भी १०।१२ साल की लड़की से शादी कर लेता है पर शास्त्रों को इस में एतराज़ नहीं। केवल लड़कियों का विवाह ऋतुमती होने से पूर्व हो जाना चाहिये और यदि उनका पति मर जाय तो उन्हें जीवन भर विधवा बन कर बैठा रहना चाहिए।

ये पतित हिन्दू इस कल्पित नर्क से भय खाकर अपनी

कुछ भी सार नहीं है। और उन नई प्रथाओं को हम स्वीकार नही कर सकते जो हमारी उन्नति और रक्षा के लिये बहुत जरूरी है।

सती होना हिन्दू समाज मे किसी जमाने मे उच्च कोटि का हिन्दू धर्म समझा जाता था। और शताब्दियों तक स्त्रियां जबर्दस्ती सती होती रही जिनके वर्णन ही अत्यन्त रोमांचकारी हैं। हिन्दू विधवा का जीवन कैसा रोमांचकारी, कथापूर्ण, कष्टों का समुद्र और शुष्क है यह प्रत्येक हिन्दू को विचारने के योग्य है। यहां हम एक अभागिनी विधवा का जो समाचार पत्रो में सती कह कर प्रसिद्ध की गई थी थोड़ा सा संक्षिप्त हाल लिखते हैं।

दो वर्ष की आयु मे एक धनी घर मे उसकी सगाई हुई और ८ वर्ष की आयु मे वह विधवा होगई। इसके बाद वह संयुक्त परिवार के १७ स्त्री पुरुषों के बीच में रहने लगी। वह शीघ्र ही उन सब की गालियां और तिरस्कार एवं मारपीट की अधिकारणी हो गई। सब से अधिक अत्याचार उस पर सास और विधवा ननद का था। उसने बड़े कष्ट से ६ साल काटे। उसके ऊपर यौवन आया और संसार का सब से बड़ा संकट उसके सन्मुख आया। उसके ज्येष्ट की कुदृष्टि उस पर पड़ी। वह नीच और लम्पट आदमी था। उसके भाव को ताड़ कर वह अभागिनी भयभीत रहने लगी, और अन्तमे उसने कुए मे डूब मरने का इरादा कर लिया। इस इरादे को जान कर उसकी सास ने उसे क्रोध से पकड़ कर उसका हाथ उबलते हुए चावलो मे डाल दिया और कहा— अब समझ कि मरना कैसा है? अभागिनी स्त्री उस पीड़ा को सह

गई और बराबर काम करती रही। अन्त में न जाने कहां से उस ने कुछ प्राचीन सतियों के कुछ वर्णन सुने और उसे सती होने की धुन सवार होगई। एक प्रकार के उन्माद में ग्रसित होकर उसने अपने सती होने की इच्छा बल-पूर्वक सब पर प्रकट कर दी।

यह जानकर उसकी सास ने प्रसन्न होकर कहा—"तू धन्य है, जा मेरे पुत्र को सुखी कर।" उसके लिए ब्याह के वस्त्र मंगवाये गये और ख़ूब गहने पहिनाये गये। गाँव भर मे चर्चा फैल गई। उसे गा बजाकर जंगल मे लेगये। उसी के पाथे हुये उपलों से चिता चुनी और उसे उस पर सुला दिया गया। उसका एक हाथ और सिर छोड़ सारा शरीर ढाँप दिया गया था। हाथ में फूंस का पूला दे उसमे आग लगादी। क्रिया कर्म वाले पण्डित ज़ोर ज़ोर से मंत्र पढ़ने और घी डालने लगे—ज़ोर के वाजे वजने लगे। और जय जय कार होने लगा। धुऐं का तूमार उठ खड़ा हुआ इस प्रकार वह अभागिनी जलकर ख़ाक होगई। और सती कहलाई। पीछे पुलिस ने बहुत से लोगो का चालान किया।

श्रीमती डा० मुथ्युलक्ष्मी रेड्डी ने एक वार व्यवस्थापक सभा में कहा था—"हिन्दू क़ानून के अनुसार एक साथ कई स्त्रियों से विवाह किया जा सकता है इस लिये जब पति लड़की को अपने घर बुलाना चाहे उसके माता पिता हरगिज़ इनकार नहीं कर सकते क्योंकि सदैव ही इस बात का भय बना रहता है कि लड़के की दूसरी शादी कर दी जायगी।

शारदा विवाह बिल के विरोध मे कुम्भ कोयनम के स्वामीङ्गल मठ के जगतगुरु शंकराचार्य ने घोषणा की थी कि 'यह बिल हिन्दू धर्म के उन पवित्र सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। जिन्हे सनातनी ब्राह्मण बहुत प्राचीन काल मे मानते चले आए हैं। पवित्र सिद्धान्तों में इस तरह का हस्ताक्षेप हम किसी कारण से भी सहन न कर सकेंगे।

अब यद्यपि सती की प्रथा क़ानूनन उठादी गई है पर अदालतों के सामने हर साल गैरक़ानूनी सती का एक न एक मुकद्मा आता ही रहता है। प्रायः बहुत सी विधवायें जीवन के कष्टों से ऊब कर वस्त्रों पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरती हैं खासकर बंगाली अखबार वाले उन सबको सती का रूप देते हैं। और खूब रंगकर उनका वर्णन छापा करते हैं।

कुछ दिन पूर्व बनारस में अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण कानफ्रेन्स हुई थी जिसमे भारत के सब भागो के तीन हजार शास्त्री एकत्रित हुए थे उसमे गहन संस्कृत भाषा में सत्रह प्रस्ताव पास हुए जिनमे एक यह भी था कि लड़कियो का विवाह आठ साल की आयु में कर दिया जाय। अधिक से अधिक नौ या दस साल तक अर्थात् ऋतुमती होने से पूर्व तक।

पर्दा हिन्दू समाज पर एक अभिशाप है। जिसे दूर होने में अभी न जाने कितनी देर है। हमने स्त्रियों को सब तरह से असहाय कर रखा है।

बड़े घरों में हमें जाने का बहुधा अवसर मिलता रहता है। एक प्रतिष्ठित जमींदार के घर का हाल सुनिये।

मकान की दूसरी मंजिल पर एक कमरा लगभग १२×९ फ़ीट था। तीन तरफ़ सपाट दीवारें और सिर्फ एक तरफ़ एक दरवाज़ा है जो कि एक लम्बी गेलरी मे है। कमरे में सदैव ही अन्धकार रहता है। इसमे एक पुरानी दरी का फ़र्श पड़ा है। जो शायद साल में एकाध बार ही झाड़ा जाता है। दीवारें काली होगई हैं। और उसमें सदैव ही दुर्गन्ध भरी रहती है। घर भर की स्त्रियाँ इसी मे दिन भर बैठी रहती हैं। और भाँति भाँति की बातें करती हैं। घर की बूढ़ी गृहणी वहीं पीढ़ी पर बैठती है, उसे घेरकर तीन बेटों की स्त्रियाँ, दो विधवा बेटियाँ कई चचेरे भाइयों भतीजो की स्त्रियाँ एक दो दासियाँ सब वही भरी रहती हैं। कुछ तम्बाकू खाती हैं, वे फ़र्श पर योंहीं थूकती रहती हैं। बच्चे १५-२० बेतरतीबी से योहीं खेलते कूदते फिरा करते हैं। कभी रोते, कभी मचलते, कभी शोर मचाते और कभी ठूस ठूस कर खाते और वहीं सो रहते हैं।

ये स्त्रियाँ दिन भर कुछ काम नहीं करती। उनका खास काम पतियों की आज्ञा पालन करना या सोना है। वे सब घर में ठाकुर पूजा करती हैं, भोजन के समय पति को खिलाकर खाती हैं। कभी पति से बोलती नहीं, उसके सामने आती नही, दिन भर पान कचरती, मिठाइयाँ खाती या सोती रहती हैं, उनकी बातचीत का विषय गहना, कपड़ा, बच्चों की बीमारियाँ, बच्चे

पैदा होने की तरकीबे, गंडे, तावीज, जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, साधु, पति को वश में करने की तरकीबे, एक दूसरे की निन्दा, कलह यही उनकी नित्यचर्या है।

वे प्राय: सब अपढ़ हैं। एक पढ़ी लिखी वहू है, उसकी उन सबके बीच मे आफत है। बुढ़िया सबको हुक्म के तावे रखना चाहती है, और पढ़ना लिखना भ्रष्टता का लक्षण समझती है।

सब स्त्रियां प्राय: रोगिणी हैं। दो बहुएं क्षय में मर गई हैं। एक की प्रसूति मे मृत्यु हुई है। जब वृद्धा से कहा गया कि आप लोगों को धूप और खुली हवा मे रहना चाहिये और परिश्रम करना चाहिये। तब वृद्धा ने कुछ नाराजी के स्वर मे कहा—खुली हवा, धूप और परिश्रम नीच जाति की स्त्रियाँ करती हैं या भले घर की बहू बेटियाँ।

जिस स्त्री को खाँसी और ज्वर है उसके दोनों फेफड़े क्षय रोग से आक्रान्त हैं। पर वह अपने बच्चे को दूध बराबर पिलाती है। बच्चा भी अत्यन्त कमज़ोर है वह रात भर रोया करता है। वह स्त्री अपना कष्ट भूल उसे रात भर गोद में लेकर हिलाती रहती है।

स्त्रियाँ और बच्चे इस घर मे बराबर मरते ही रहते है पर और नये पैदा होते ही रहते हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है।

वे स्त्रियाँ इस गन्दे अन्धेरे घर में प्रसन्न हैं। उन्हे पतियो के प्रति शिकायत नही। वे खुली हवा में घूमना अधर्म समझती

हैं, पति के साथ घूमना या बात करना तो एक दम पाप की बात है। वे हमारे उपदेशों को उपेक्षा और हँसी मे टाल देती हैं। कभी कभी चहस भी करने लगती हैं। वे अपने दुर्बल, काले रोगी बालकों को प्यार करती हैं—उन पर उन्हें अभिमान है, एक स्त्री का जो पढ़ी लिखी है घर भर अपमान करता है—क्योंकि उसके अभी पुत्र नहीं हुआ है और वह उनकी गोष्ठी से अलग रहती है। जो बहुएं मर चुकी हैं, उन्हें वृद्धा भाग्यवान् समझती है। और अपनी विधवा बेटियों को अभागिनी कहकर रोया करती है।

बुढ़िया को पुत्र पौत्रो को इधर उधर बेतरतीब से रोते मचलते, सोते बैठते, चीखते चिल्लाते देख कर बड़ा आनन्द आता है। वे कल्पना नहीं कर सकती कि जगत मे उन से ज्यादा सुखी कोई दूसरा भी है या नहीं।

बच्चों का पालन कुसंस्कारों और रूढ़ियों के कारण ऐसा गर्हीत हो गया है कि अपने जन्म के बाद पहले ही वर्ष मे प्रत्येक तीन बच्चों मे एक मर ही जाता है। भारतवर्ष के बच्चे पशुओं और कीड़ों से किसी भांति श्रेष्ठ नहीं समझे जाते। एक बार कृष्णमूर्त्ति ने एक व्याख्यान में कहा था :—

"भारतवर्ष मे बच्चे किस भाँति खुश रह सकते हैं ? मैं तुमसे अपने ही बचपन की तरफ ख्याल करने को कहता हूँ, मैं नहीं कह सकता कि मेरा बचपन सुख पूर्ण था। मैं अपने माता पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कहता। क्योंकि जो कुछ हुआ वह

प्राचीन प्रथा के अनुसार चलने का फल था। भारतवर्ष से बच्चे जितनी बुरी हालत मे रहते हैं, संसार के और किसी देश में वे वैसे नही रहते ? भारतवर्ष मे बच्चा सब से अभागा प्राणी है। न उसका कोई अलग स्थान होता है और न चित्त विनोद का कोई साधन। वह जब चाहता है सो जाता है। बच्चों की देख भाल का कोई ख़याल नहीं रखता। तुम और मैं इन बातो को भली भाँति जानते हैं। यह सच है कि ज़ाहिर में बच्चों को बहुत प्यार किया जाता है। पर बच्चे के कल्याण के लिये उस प्यार मे कोई नियम नहीं है। .. .. बच्चा गन्दगी कीचड़ और धूल मे रह कर बड़ा होता है। मेरा हमेशा से यह विचार था कि मेरा फिर से भारत मे जन्म हो, पर अब अगर मेरे लिये ऐसा अवसर आवे तो मै हिचकूँगा। क्योकि अमेरिका और योरोप में बच्चे जैसे प्रसन्न रहते हैं उसका तुम को ख़याल भी नहीं है। बचपन ही वास्तव में आनन्दित रहने का समय है। क्योकि बड़े होने पर हम उसकी याद किया करते हैं। यही अवस्था है जब बालक के भाव दृढ़ हो जाते हैं। आजकल भारत मे चारों तरफ जैसी निन्दनीय बाते फैली हुई हैं इन के बीच मे रह कर बच्चा कैसे खुश रह सकता है ?"

कन्याये सन्तान रूप कलंक हैं यह भावना हिन्दुओं की नीच प्रकृति की परिचायक है। राजपूत लोग घमण्ड से कहा करते हैं कि हम किसी को दामाद न बनावेगे और इसीलिये वे जन्मते ही कन्याओं को मार डाला करते थे। परन्तु अब भी कुछ लोग ऐसा

करते हैं। जाटों में भी ऐसी ही प्रथा प्रचलित है। और यह तो मानी हुई बात है कि लड़की पैदा होते ही घर वालों के मुँह लटक जाते हैं—मानो कोई बड़ा भारी अपशकुन हो गया हो। लड़कियाँ बहुधा घरों में अवज्ञा और अपमान मे पला करती हैं। बहुत सी कन्याएं बालकाल मे मर जाती हैं। बंगाल मे अनेक कन्याएं दहेज की कुप्रथा के कारण जल मरी हैं। ऐसी हत्याओं की कथा ऐसी करुणा पूर्ण है कि उन क्रूर कमीने माता पिताओं तथा जाति बन्धनों और कर्म बन्धनों के प्रति बिना तीव्र घृणा हुए नहीं रह सकती। प्रायः लड़कियों को प्यार के समय भी मरने की गाली दी जाती है। पर बेटे के लिये ऐसा कहना घोर पाप है।

अछूतों का प्रश्न तो खुला प्रश्न है। उन्हें हिन्दुओं ने बल-पूर्वक इतना गिरा दिया है कि वे हमारे सामने ही जीते जी नरक भोग करते हैं।

आज महात्मा गान्धी के आत्म यज्ञ के कारण परिस्थिति में चाहे भी जैसी हलचल उत्पन्न हो गई हो फिर भी यह सत्य है कि अभी तक हम अछूतों को पशुओं से बदतर समझते हैं। साइ-मन कमीशन को जालन्धर के अछूत मण्डल ने जो अपना वक्त-व्य दिया था उसका आशय इस प्रकार है—'हमे हिन्दू धर्म पर विश्वास नहीं। न हम उसके पाबन्द हैं। न हम हिन्दुओं से कोइ राजनैतिक या सामाजिक सम्बन्ध रखते हैं। जो हमें छूने से भी घृणा करते और छाया से दूर रहना चाहते हैं। यद्यपि वे हमे

अपने साथ घसीटना चाहते हैं क्योकि हमारे बिना उनका काम नहीं चल सकता।'

इस वक्तव्य मे एक अक्षर का भी असत्य या अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है और हम जब तक अपने समाज से उनकी आवश्यक्ताओं को न निकाल देंगे—हम अछूतो के मित्र नहीं बने रह सकते। लोग पुजारियो और पण्डितो पर नाराज हैं इस लिये कि वे उन्हे मन्दिरो मे प्रवेश नहीं करने देते। परन्तु मैं कहता हूं तुम उन्हे अपने रसोई घर मे क्यो नही प्रविष्ट होने देते। कौन पुजारी तुम्हे रोकता है। क्या तुम मन्दिरो को रसोई घर से कम पवित्र समझते हो? इस का खुला अर्थ तो यह है कि तुम चीमटे से छू कर धर्म कमाना चाहते हो। दिमागी--गुलामी की भरपूर बू उसमे है।

—

आज यदि देश के शहरो से पाखाने का वर्तमान सिष्टम उठा दिया जाय और भंगियो को शिल्प साहित्य कला के काम सिखाये जायँ और किसी को भी भंगी की आवश्यकता न रहे तो अछूतो का उद्धार हो सकता है, अन्यथा नही।

पशुओ के पालन सम्बन्धी अज्ञान हमारा सामाजिक पाप है। बहुत से उपयोगी पशुओ से तो हम कुछ लाभ उठा ही नहीं सकते। भेड़, बकरियां मुर्गे मुर्गी, आदि जानवरो को पालने की तो धर्म की ही आज्ञा नही। हम दूध के पशु पालते हैं—कुछ परिन्दो को पालते तथा सवारी और खेती के पशुओ को पालते हैं—परन्तु इतने निकृष्ट ढंग से कि उसे महा मूर्खता कहा जा सकता है।

प्राय: अधमरी गायें और बछड़े गली २ भटकती दीख पड़ती हैं। कहने को हम बड़े भारी गो भक्त हैं पर गोभक्ति की असलियत तो हमारी गोशालाओं की दशा को देखने से खुल जाती है। जैसा कष्ट पशु पक्षी हमारे घरों मे पाते हैं वैसा कष्ट मांसाहारी लोग भी पशुओं को नही देते। किसी प्राणी को धीरे २ बहुत दिनो तक कष्ट देकर मार डालने की अपेक्षा एक दम खतम कर देना कम निर्दयता का काम है।

प्राय: गायो के बच्चे असावधानी से मर जाते है। और उनकी खालो में भुस भरवा कर उनके सामने रख कर दूध दुहा जाता है। प्राय: बच्चों को कुत्ते फाड़ खाया करते हैं।

एक समय था कि साधारण गृहस्थियों के पास भी हजारों की संख्या मे गायें रहती थीं। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व कालायन के काल में गौ १० पैसे को, और बछड़ा ४ पैसे को मिलता था। बैल की क़ीमत ६ पैसा थी, भैंस ८ पैसे मे आती थी। और दूध १ पैसे में १ मन आता था, इसके २०० वर्ष बाद मसीह से ३०० वर्ष प्रथम जब भारत पर सम्राट चन्द्रगुप्त शासन करते थे घी १ पैसे का २ सेर और दूध २५ सेर मिलता था। ईसवी सन के शुरू मे ४८ पैसे की गाय ९३ पैसे का बैल मिलता था। ५ वीं शताब्दी मे विक्रमादित्य के राज्य में गौ ८० पैसे मे और बैल ५१२ पैसे में मिलती थी। अलाउद्दीन के जमाने में घी का भाव दिल्ली मे ७४ पैसे मन था और अकबर के जमाने मे १९५ आने मन।

यह वह जमाना था जब दूध बेचना पाप समझा जाता

था। नगर बस्तियों के बाहर घने बन थे और उनमे गाय स्वच्छंद चरा करती थी। उन दिनो दीर्घायु निरोगी काया और दुर्धर्षबल शरीर मे रहता था। आज वे दिन न रहे। आज हमारे दुधमुहे बच्चों को भी एक बूंद दूध मिलना दुर्लभ हो रहा है। आस्ट्रेलिया की आबादी ४ लाख हैं और गाये १२ करोड़। पर भारत के ३४ करोड़ नर नारियों में सिर्फ ४ करोड़। भारत मे प्रति वर्ष ४० लाख गाय बैल काटे जाते हैं। जिनमें केवल दो लाख भारतीय मुसलमानों के काम आते हैं। शेष ३८ लाख की खपत देश के बाहर होती है। इस समय गो मांस का सबसे सस्ता बाजार भारतवर्ष है। इस हत्या से घी दूध ही नहीं अन्न की पैदावार भी कम हो रही है जंगल साफ हो रहे हैं जमीनो के रकबे बढ़ रहे है परन्तु मजबूत गाय बैलो की देश मे बराबर कमी हो रही है।

भारत में करीब ८० हजार गोरे सिपाही हैं। जिनका मुख्य भोजन गो मांस है। यदि प्रत्येक पुरुष १॥ सेर मांस भी प्रतिदिन खाय तो रोजाना ९४६ मन और साल भर में ३ लाख ४५ हजार २९० मन हुआ। इतना कितनी गौओं की हत्या से मिलेगा? फिर ७ करोड़ मुसलमान भी हैं जो जिद या गरीबी के कारण बकरे का मांस जिसे हिन्दुओ ने मँहगा कर दिया है, न खाकर सस्ता गाय का मांस खाते हैं।

दर्जन भर सरकारी कसाई घरो के अलावा देश मे ३॥ लाख कसाई हैं। यह जानकर रोमांच होता है आज ऋषियो की पवित्र भूमि पर २० करोड़ मांसाहारी मनुष्य रहते हैं इनमे से

७ करोड़ मुसलमान और १० लाख अंग्रेज़ निकाल दिये जायँ तो भी ८॥ करोड़ हिन्दू बच रहते हैं।

इसके सिवा गत १० वर्षों में ३२ लाख जीते पशु काट जाने के लिये पानी के रास्ते और १६ लाख से ऊपर खुश्की के रास्ते ईरान तिब्बत आदि को मांस के लिये भेजे गये हैं।

यह दया धर्म वाले हिन्दुओं के धम का नमूना है। जो लाखों रुपयों की सम्पत्ति रखने पर भी गायें पालना आवश्यक नहीं समझते।

पशुओं का घर मे वही स्थान होना चाहिये जो घर में बच्चों का होता है। पशु पालना दया के ऊपर निर्भर नहीं प्रेम के ऊपर रहना चाहिये। परन्तु हमारी पशु दया की रूढ़ि है, हम में त्याग नहीं।

अब हम छोटी छोटी कुछ कुरीतियों का दिग्दर्शन करके इस अध्याय की समाप्ती करेंगे।

संस्कारों को ही लीजिये, उपनयन, कर्णवेध, मुण्डन, आदि सर्वत्र ही कुरीतियों का दौर दौरा है ? एक नाटक सा करके इन संस्कारों की रस्में पूरी की जाती हैं।

ग़मी होने पर बिरादरी भोज एक विचित्र और घृणास्पद बात है। घर वालों के आँसू बह रहे हैं और पुरोहित और बिरादरी तर माल उड़ा रहे हैं। पुरोहित की बन आती है, मृतात्मा की सद्गति के बहाने गोदान, शैयादान, न जाने क्या क्या दान

करवाते हैं। श्राद्धों की धूमधाम विवाह से बढ़ जाती है। क्या मृत व्यक्ति को इससे वास्तव में कुछ लाभ पहुँचता है। गया पिण्ड और तर्पण करते देखा गया है, पण्डे किस भाँति हलाल करते हैं। क्या कोई यह भी पूंछ सकता है कि इन सब दान धर्म का मृत व्यक्ति से क्या सम्बन्ध हो सकता है।

नवां अध्याय



पाखण्ड

पाखण्ड मे सब से पहिला नम्बर मूर्त्ति पूजा का है । दो हज़ार वर्ष से भी अधिक काल से इस पाखण्ड ने मनुष्य जाति को बेवक़ूफ़ बनाया है। आज संसार भर की सभ्य जातियो ने मूर्त्ति पूजा को नष्ट कर दिया है। वह या तो कुछ जङ्गली जातियो में जो तातार के उजाड़ प्रदेश में हैं, अथवा अफ्रीका के असभ्य लोगो मे या फिर अपने को सब से श्रेष्ठ समझने वाले हिन्दुओं में प्रचलित है। यहाँ हम संक्षेप से इस मूर्त्ति पूजा का इतिहास दिये देते हैं।

सब से प्रथम मैं दृढ़ता पूर्वक आप को यह बता देना चाहता हूँ कि प्राचीन काल के हिन्दुओं का कोई मन्दिर न था और वे मूर्त्ति की पूजा नहीं करते थे। वेद मे मूर्त्ति पूजा,का कोई विधान नहीं है। वेद में उन देवताओ का भी कोई जिक्र नहीं है,

जिन्हें इन पेशेवर गुनहगारो ने कल्पित करके झूठ और बेईमानी की दुकान खोली है।

हम आपको बता चुके हैं कि प्राचीन काल मे आर्य लोग यज्ञ करते थे और वही उनका प्रधान धर्म चिह्न था। इसके बाद जब बौद्धो ने अपने उतुङ्ग काल में भारत की सीमाओं को पार करके चीन, तातार, यूनान और उन प्राचीन प्रदेशो मे धर्मप्रचार के लिये भ्रमण किया जहाँ असंख्य भयानक देवताओं, जिनो, प्रेतो और भयानक अद्भुत शक्तिशाली जीवो का विश्वास प्रचलित था। वे मूर्त्तिपूजा की भावना को लेकर भारत मे लौटे और लग भग इस से कुछ ही पूर्व सिकन्दर के साथ जो यूनानी भारत मे आये वे भी अपने संस्कार छोड़ गये। जिस के फल स्वरूप प्रथम बौद्धों में और बाद को हिन्दुओं मे मूर्त्तिपूजा का प्रचार हो गया। यज्ञों के देवता मूर्त्तिमान बनकर बदल गये। वेद का 'रुद्र' जो वास्तव में वायु का नाम था 'गिरीश' या नीलकण्ठ बन गया। मण्डूक उपनिषद् मे वर्णित अग्नि की सात जिह्वाएं काली कराली, सुलोहिता, सुधूमवर्णा आदि शिव की पत्नियाँ हो गईं। केनोपनिषद् की उमा हैमवती जिस ने इन्द्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था—शिव की पत्नी कल्पित की गई। शतपथ ब्राह्मण के असुरो को नाश करने वाले विष्णु को भी महत्व मिल गया। जो वास्तव में सूर्य का नाम था। परन्तु इस काल तक भी देवकी पुत्र कृष्ण की देवताओं में गणना न थी। वह छान्दोग्य उपनिषद् मे केवल अंगिरस ऋषि का एक शिष्य बताया गया है।

धीरे धीरे इन पाखण्ड पूर्ण विधानों के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ने लगी और प्रसिद्ध पौराणिक देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव के नाम प्रसिद्ध हो गये। ये तीनों देवता सृष्टि के उत्पादन, पालन और संहार इन तीन कामों के प्रथम देवता थे। वास्तव मे यह हिन्दुत्रैकत्व बौद्धत्रैकत्व की नकल थी।

वर्त्तमान मनुस्मृति मे जो बौद्ध काल के आरम्भ मे बनी है इस त्रिदेव की कुछ भी चर्चा नहीं है। न उस मे हिन्दुओं की मूर्त्तिपूजा का ही जिक्र है। हाँ, उस समय मूर्त्तिपूजा प्रारम्भ हो चली थी और उच्च कोटि के हिन्दू उस से घृणा करते थे। परन्तु यह अद्भुत रीति बढ़ती ही गई और हिन्दू धर्म की प्रधान वस्तु हो गई। अब अग्निहोत्र एक अतीत वस्तु बन गया था। ईसा की छटी शताब्दी में कालीदास के समय मे यह प्रथा खूब प्रचलित हो गई थी। फाहियान चीनी यात्री जो भारत मे सन् ४०० ईस्वी में आया था। उस ने काबुल मे बौद्धों का पूर्ण विस्तार देखा था और वह कहता है वहाँ ५०० बौद्ध विहार है। उसने तक्ष शिला का विश्व-विख्यात विश्वविद्यालय देखा था और पेशावर मे बहुत बड़ा बौद्ध स्तम्भ देखा था। मथुरा में उसने तीन हज़ार बौद्ध भिक्षुओ का सङ्घ देखा था और यहाँ उसने बौद्धधर्म का भारी प्रचार देखा था। राजपूताने के सब राजाओं को उसने बौद्ध धर्मी पाया था उसने सर्वत्र ऐसे विहार देखे थे जिनके लिये राजाओं और श्रीमन्तों ने लाखो रु० लगाये थे। सर्वत्र घूमता हुआ वह पटने गया और उस ने वहाँ बौद्धों के सङ्घ में प्रथम बार

मूर्त्ति को देखा। वह लिखता है :—

"प्रति वर्ष दूसरे मास के आठवें दिन मूर्त्तियों की एक यात्रा निकलती है, इस अवसर पर लोग एक चार पहिये का रथ बनवाते हैं और उस पर बांसों का ठाठ बांधकर पांच खण्ड का बनाते हैं उसके बीच में एक खम्भा रखते हैं जो तीन फल वाले भाले की भाँति होता है। और ऊँचाई मे २२ फीट या इस से अधिक होता है। और एक मन्दिर की भांति दीख पड़ता है। तब वे सफेद मलमल से उसे ढकते हैं। और चटकीले रङ्गो से रङ्गते हैं। फिर देवो की चॉदी सोने की मूर्त्तियाँ बना कर चॉदी सोने और कांच से आभूषित करके कामदार रेशमी चन्दुए के नीचे बैठाते हैं। रथ के चारों कोनों पर वे ताख बनाते और उन में बुद्ध की बैठी मूर्त्तियाँ जिन की सेवा मे एक बोधिसत्व खड़ा रहता है—बनाते हैं। ऐसे ऐसे बीस रथ बनाए जाते हैं। इस यात्रा के दिन बहुत से गृहस्थ और सन्यासी एकत्रित होते हैं। जब वे फूल और धूप चढ़ाते हैं तो बाजा बजता है और खेल होता है। श्रमण लोग पूजा को आते है। तब बौद्ध एक एक करके नगर में प्रवेश करते हैं। और वहाँ वे ठहरते है। तब रात भर रोशनी करते हैं। गाना और खेल होता है। पूजा होती है ......।"

यहाँ से यह यात्री राजगृही, गया, काशी, कौशाम्बी और चम्पा तक पहुँचा जो पूर्वी विहार की राजधानी थी। परन्तु उस ने कहीं भी एक भी मन्दिर हिन्दुओं का इन तीर्थों मे नहीं देखा, सर्वत्र बौद्धो के सङ्घाराम देखे। फिर वह ताम्रपल्ली गया वहाँ भी

उसने २४ सङ्घाराम देखे। अन्त में वह सिंहल को जहाज़ में बैठ गया।

इस यात्री के दो सौ वर्ष बाद हेनसांग चीनी, यात्री भारत में आया, वह फर्गन, समरकन्द, बुखारा और बलख होता हुआ भारतवर्ष में आया। वह सन् ६४० ईस्वी में भारत-वर्ष मे था।

उसने जलालाबाद को सम्पन्न नगर पाया जो बौद्धो से परिपूर्ण था, उसने यहां ५ शिवाले हिन्दुओ के देखे। और सौ पुजारी भी देखे। कन्दहार और पेशावर में उसने १ हजार बौद्ध संघारामों को उजड़ और खण्डहर पाया तथा हिन्दुओं के सौ मन्दिर देखे।

वह मालवे के राजा शिलादित्य का वर्णन करता है जो प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पुत्र था। विक्रम ने एक बौद्ध भिक्षु को जिसका नाम मनोव्हृत् था हिन्दुओ के पक्ष पाती होने के कारण अपमानित किया था—परन्तु शिलादित्य ने उसे बुला कर प्रतिष्ठा की थी। इससे आगे इस यात्री ने पोलुश नगर के निकट एक ऊंचे पर्वत पर नीले पत्थर से काटकर घड़ी हुई एक दुर्गा देवी की मूर्ति देखी थी। यहां उसने धनी और दरिद्र सब को एकत्रित हो कर मूर्ति की पूजा करते देखे थे। पर्वत के नीचे महेश्वर का एक मन्दिर था और वहां वे साधु रहते थे जो राख लपेटे रहते थे।

काबुल और चमन मे जहां दो शताब्दि प्रथम फाहियान ने

बौद्ध धर्म का प्रबल प्रताप देखा था—इस यात्री ने सब संघारामों को उजाड़ तथा देवताओं के दस मन्दिर देखे थे, वह तक्षशीला और कश्मीर भी गया—वहां उसे जैन मिले जो महावीर की मूर्ति पूजते थे। काश्मीर मे बौद्ध अभी भी काफी थे। वहां उस समय कनिष्ट राज्य करता था जो बौद्ध था। और जिसने एक बार बौद्धो के उन्नत करने को सभा बुला कर महायान समुदाय प्रचलित किया था। उसने पंजाब के राजा मिहिरकुल का भी जिक्र किया है जो बोद्धो का प्रसिद्ध वैरी था। जिसने पांचो खण्डो के बौद्ध भिक्षुओं को मार डालने की आज्ञा दी थी और जिसने कन्दहार को विजय कर वहां के राजवंश को नष्ट कर डाला तथा बौद्ध धर्म के संघारामोस्तूपो और भिक्षुओ को छिन्न भिन्न कर दिया था। सिंध के तट पर इसने ३ लाख बौद्धों को कतल कराया था।

मथुरा में इसने अभी तक बौद्धों का प्रताप देखा था। वहां अभी २० संघाराम थे और दो हजार भिक्षु यहा की पूजा उत्सव आदि करते थे।

द्वाव मे आकर उसने गंगा की प्रशंसा सुनी, जो पापों का नाश करने वाली प्रसिद्ध थी। वह उसकी भारी धार को देखकर भी बहुत प्रभावित हुआ था। हरद्वार मे उसने एक बड़ा देव मन्दिर देखा जिसमे बड़े चमत्कार किये जाते थे। हर की पैड़ी तब पत्थर की बन चुकी थी, और उसमें नहाने का महात्म्य भी प्रसिद्ध होगया था।

कन्नौज को उसने गुप्त राजाओं की सम्पन्न नगरी पाया

था। यहाँ उसने बौद्धों और हिन्दुओं को बराबर पाया। यहाँ १०० संघाराम और १० हज़ार भिक्षु तथा २०० देव मन्दिर और उसके कई हज़ार पुजारी उसने देखे थे। यहाँ के प्रतापी बौद्ध राजा शिलादित्य द्वितीय से वह मिला था। जिसने गंगा के पूर्वी किनारे पर १०० फीट ऊँचे स्तम्भ पर एक पूरे कद की सोने की बुद्धमूर्ति स्थापित की थी।

वह लिखता है—

"वसन्त ऋतु के तीन मास तक वह भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भोजन देता था, संघाराम से महल तक का सब स्थान तम्बुओं और गवैयो के खीमो से भर जाता था। बुद्ध की एक छोटी सी मूर्ति एक अत्यन्त सजे हुये हाथी पर रखी जाती थी और शिलादित्य इन्द्र की भाँति सजा हुआ उस मूर्ति की बाईं ओर और कामरूप का राजा दाहिनी ओर ५।५ सौ युद्ध के हाथियो की रक्षा में चलता था। राजा चारो ओर मोती, सोने चान्दी के फूल एवं अनेक बहुमूल्य चीजे फेंकता जाता था। मूर्ति को स्नान कराया जाता। और शिलादित्य उसे स्वयं कन्धे पर रखकर पच्छिम के बुर्ज पर ले जाता था। और उसे रेशमी वस्त्र तथा रत्न जटित भूषण पहनाता था। फिर भोजन और शास्त्र चर्चा होती थी।

इन सब उदाहरणो से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि हिन्दुओ ने मूर्ति पूजा ही नहीं उत्सव और त्यौहारों का मनाना भी बौद्धो से सीख लिया था। इस यात्री ने अयोध्या मे भी

बौद्धों के १० संघाराम और ३००० जन अर्हत देखे थे। हिन्दू भी बहुत थे। इलाहाबाद मे उसने कट्टर हिन्दू देखे थे। और संगम पर सैकड़ों मनुष्यों को स्वर्ग पाने की इच्छा से मरते देखा था।

वह कहता है कि नदी के बीच मे एक ऊँचा स्तम्भ था। लोग इस पर चढ़ कर डूबते सूर्य को देखने जाते थे। श्रावस्ती, कौशाम्बी और काशी में भी उस ने हिन्दुओं का जोर देखा था। काशी मे उसने ३० सन्घाराम और ३००० भिक्षुओं को देखा था। साथ ही सौ मन्दिर और दस हज़ार मनुष्य पुजारी देखे थे। यहाँ भी सिर्फ महेश्वर की पूजा होती थी। महेश्वर की ताम्बे की मूर्त्ति सौ फीट ऊँची थी और वह इतनी गम्भीर और तेज पूर्ण थी कि जीवित जान पड़ती थी।

काशी में, एक विहार में एक कदे आदम बुद्ध मूर्त्ति भी इस यात्री ने देखी थी। वैशाली में उसने सङ्घरामो को खण्डहर देखा था और बहुत कम भिक्षुक वहाँ रहते थे—देव मन्दिर बहुत बन गये थे। मगध में उस ने पचास सङ्घाराम देखे जिन में दस हज़ार भिक्षु रहते थे। यहाँ दस हिन्दुओं के मन्दिर थे। पाटली पुत्र इस के समय में उजड़ गया था। गया में उस ने ब्राह्मणो के हजार घर देखे थे। गया के बोधि वृक्ष और विहार की चढ़ी-चढ़ी शोभा इस यात्री ने देखी थी। वह लिखता है:—

"यह १६० या १७० फीट ऊँचा है। और बहुत सुन्दर वेल बूटो का काम इस पर हुआ है। कहीं तो मोतियों से गुथी हुई

मूर्तियां बनी हैं—कहीं ऋषियों या देवताओं की मूर्तियां हैं। इन सबके चारों ओर ताम्बे का सुनहला आमलक फल है इसके निकट ही महाबोधि संघाराम की बड़ी इमारत है। जिसे लंका के राजा ने बनवाया है। उसकी ६ दीवारें तथा तीन खण्ड ऊंचे बुर्ज हैं। इसके चारो ओर ३०।४० फिट ऊंची सफील है। ...इसमें शिल्प की बहुत भारी कला खर्च की गई है। बुद्ध की सोने चांदी की मूर्तियाँ हैं और उन में रत्न जड़े हैं। वर्षा ऋतु में यहां बौद्धों का भारी मेला लगता है लाखों मनुष्य आते और, दिन रात उत्सव मनाते हैं।"

इसने नालंद विश्वविद्यालय में कामरूप के राजा के साथ कुछ दिन व्यतीत किये थे। और बड़े २ विद्वानो से इसने बात चीत की थी। मुंगेर और पूर्वी बिहार में तथा उत्तरी बंगाल में बौद्धों और हिन्दुओं के संघाराम और मन्दिर दोनों ही देखे। फिर वह आसाम, मनीपुर, सिलहट आदि में आया जहां हिन्दुओं के बहुत से मन्दिर बन गये थे। और बौद्धो का बहुत कुछ ह्रास होगया था।

यहां उसने एक भी संघाराम नहीं देखा। ताम्रलिप्त राज्य जो आजकल मिदनापुर के आस पास है बौद्धो के सङ्घाराम जहां तहां देखे। कर्ण सुवर्ण (मुरशिदाबाद) मे उसने बौद्धों और हिंदुओं दोनों को देखा था। उड़ीसा में उसने बौद्धो के १०० सङ्घाराम तथा १० हजार भिक्षु देखे थे। पुरी का मन्दिर नही बना था, पर वहां १० मन्दिर हिन्दुओ के बन गये थे और यह स्थान बौद्धों की

रक्षा का एक मात्र स्थान था । बौद्धों की रीति पर आज भी पुरी मे जगन्नाथ जी की रथ यात्रा होती है । कलिंग राज्य में बौद्ध धर्म न था । बरार में बौद्ध हिन्दू दोनो समान थे । यहीं प्रसिद्ध सिद्ध नागार्जुन रहता था । आन्ध्र प्रदेश मे उसने २० सङ्घाराम और ३० देव मन्दिर देखे थे । अधिकांश मठ उजड़ गये थे । मन्दिर और उनके पुजारी बढ़ गये थे, द्राविड देशमे उसने बौद्धों का भारी जोर देखा था, यहां १०० सङ्घाराम और १० हजार भिक्षु थे । मलाबार मे भी उसने बौद्धो और हिन्दुओं को समान देखा था । लंका वह नहीं गया पर वह लिखता है वहां १०० मठ और २० हजार भिक्षु हैं । महाराष्ट्र प्रदेश मे उसने अनेक बड़े २ सङ्घाराम देखे, ऐजेन्टा की प्रसिद्ध गुफाऐं भी उसने देखी थी, यहां ७० फुट ऊँची बुद्ध की एक पत्थर की मूर्ति थी । जिस पर एक ही पत्थर का ७ मंजिला चंदवा था जो अधर खड़ा था । मालवे में उसने १०० सन्धाराम और १०० देव मन्दिर देखे थे । कच्छ गुजरात और सिन्ध मे भी उसने सर्वत्र घटते हुऐ बौद्ध धर्म और बढ़ते हुए मूर्ति पूजक हिंदू धर्म को देखा था ।

इन मन्दिरों मे इनके पुजारियों ने कुछ ही शताब्दियो मे अटूट सम्पदा इकट्ठी कर ली और समस्त हिन्दू जाति का धन इन मन्दिरो मे एकत्र हो गया । भारत के सभी नगर इन मूर्ख पुजारियों से भर गये । सन् ६१२ ई० मे जब मुहम्मद बिनकासिम ने दाहर को परास्त किया तब सिन्ध (हैदराबाद) के एक मन्दिर से उसे ४० डेगें ताम्बे की भरी हुई मिली थीं जिन में १७२०० मन

सोना भरा था। इसके अतिरिक्त ६००० ठोस सोने की मूर्त्तियाँ थीं जिन मे सब से बड़ी का वज़न ३० मन था। हीरा, पन्ना, मोती मानिक इतना था जो कई ऊँटों पर लादा गया था।

महमूद गज़नवी ने ११ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नगरकोट के मन्दिर को लूटा और उस में से ७०० मन अशर्फी और ७०० मन सोने चाँदी के बर्तन; ७४० मन सोना २००० मन चाँदी और २० मन हीरा मोती लूट में मिले थे। इसी साहसी योद्धा ने आगे बढ़ कर गुजरात का सोमनाथ का वह प्रसिद्ध मन्दिर लूटा था जिस में अनगिनत रत्नजटित ५६ खम्भे लगे थे और मूर्त्ति के ऊपर ४० मन वज़नी ठोस सोने की ज़ञ्जीर से घण्टा लटक रहा था। इस लूट की सम्पदा की गणना न थी।

आज भी यदि आँख के अन्धे हिन्दू आँख खोल कर देखें तो उन्हें अपनी कमाई का सब से बड़ा भाग मन्दिरों में सञ्चित मिलेगा। नाथद्वारा के मन्दिर की ही मैं अपने अनुभव की बात कहता हूँ। इस मन्दिर के लिये उदयपुर राज्य से २८ गाँव जागीर मे मिले हैं। और उसका दैनिक ख़र्च १०००) रुपये का है आमदनी चढ़ावे की बेशुमार है। ठाकुर जी पर चढ़ावा अलग चढ़ता है, गुसांई जी पर अलग, उनकी स्त्री और बच्चों पर अलग। इस प्रकार करोड़ो रुपये के जवाहरात इस मन्दिर मे सुरक्षित हैं। १०००) रुपये रोज़ाना का जो खर्चा होता है इस में से किसी भी दीन दुखिया को एक पाई नही मिलती न किसी का इस से उपकार होता है। यह रुपया सब भोग मे खर्च होता है और वह

भोग तनख़ाह के तौर पर काम करने वालों को बांटा जाता है जो उसे घर २ बेच देते हैं।

अन्य मन्दिरो की भी यही दशा है और उन के पुजारियों को वह सब आमदनी स्वेच्छा से खर्च करने का पूरा अधिकार है। सब लोग जानते हैं कि ये पुजारी प्रायः मूर्ख, शराबी, लम्पट, व्यभिचारी और नीच प्रकृति होते हैं। पत्थर पूजने का जड़ काम कोई भी बुद्धिमान नही कर सकता। ईश्वर ही जान सकता है कैसे इस महामूर्खता के विचार हिन्दुओं के दिमाग़ो से दूर होंगे।

पण्डे पुजारियों के बाद पाखण्डियों में दूसरा नम्बर साधु महात्माओं का है। भारतवर्ष में इस समय ५२ लाख मुसण्डे साधु हैं। जिनका पेशा गृहस्थों की गाढ़ी कमाई को हरण करना। खाना पीना मौज उड़ाना और गृहस्थ की स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना है। ये लोग धेले का गेरू और एक पैसा सिर मुड़ाई का देकर एकदम महात्मा बन जाते है। इनके अनेक पन्थ और अखाड़े हैं। दादूपन्थी, रामसनेही, कबीर पन्थी, निरंजनी, उदासी, नागर नाथ, आदि न जाने क्या क्या। इनके बड़े बड़े मत और गुरद्वारे हैं। और उसमें लाखों की सम्पत्ति है। ये लोग जाट, माली, गूजर, विसनोई, कुरमी आदि किसान पेशा लोगों से चेला मूंडते ह। यहाँ आलसी, निकम्मे लड़के मेहनत से बचने के लिए आसानी से मिल जाते है। साहूकार के क़र्जे से भी बच जाते हैं। ये लोग दिन भर राम नाम भजने या माला फेरने का ढोंग किया

करते हैं। और खूब माल मलीदे उड़ाते हैं। एक अंग्रेज यात्री ने इन्हें 'इटेलियन-स्टेलियन' कहा है। यह वास्तव में नरों में सांड हैं। ये अपने को 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हुये अपने ही समान सबको ब्रह्म ही समझने लगते हैं। वे प्रायः अपने शिष्यों को सदा यही उपदेश देते हैं 'ब्रह्मनी ब्रह्म लग्नम्'। और वे आँख के अन्धे गांठ के पूरे 'हरेनमः बाबजी' कह देते हैं। मौका पाकर ये ब्रह्मनी से ब्रह्म का सचमुच लग्नम् कर देते हैं। एकबार गुरुदेव की एक ब्रह्मनी (चेली) पर उनके एक ब्रह्म ने ऐसा ही कुछ अनुभव कर डाला—इस पर गुरू ने फटकार कर कहा—अरे पापी, यह क्या किया ? उसने कहा—महाराज मैंने तो ब्रह्म से ब्रह्म मिलाया, यह तो पाप नहीं। गुरूजी ताव पेच खाकर चुप रहे। अवसर पा उन्होंने भी चेले की स्त्री को एक दिन गुरुमन्त्र का अभ्यास करा दिया। परन्तु शिष्य भी पहुँच गये और लगे गुरू की जूती से पूजा करने। गुरूजी जब हाय तोबा करने लगे तो शिष्य ने कहा—'महाराज, चर्मनी चर्म लग्नम्। ब्रह्मनी लग्नम् किम् ?' अर्थात् चमड़े से चमड़ा लगा ब्रह्म को क्या लगा—वह क्यों रोता चिल्लाता है ?

गांजा, सुलफा, भंग, चरस आदि का पीना इनका धर्म है। और गालियाँ बकना इनका स्वभाव। इनके द्वारा जो जो अनर्थ और अपराध समाज मे किये जाते हैं उनका वर्णन हम स्थान स्थान पर इस पुस्तक में कर चुके हैं।

अब तीसरे दर्जे के पाखण्डियों की सुनिये। ये जोशी

बाबा भड्डरी और पत्रा देखकर शकुन मुहूर्त बताने वाले हैं। ये लोग प्रत्येक गाँव शहर और क़स्बो में मक्खी की औलाद की भाँति भिनभिनाते घूमते रहते हैं और अवसर पाते ही स्त्रियाँ और बेवक़ूफ़ों को ठगा करते हैं।

मुहूर्त के लोग इतने क़ायल हैं कि बिना मुहूर्त पूछे वे कोई काम ही नही किया चाहते। ज्योंहीं आपने किसी जोशी बाबा को बुलाया कि वे पत्रा खोलकर गणित करने का पाखण्ड करेंगे, उँगलियों पर कुछ गिनती करेंगे, और फिर सिर हिलाकर धीरे धीरे गम्भीरता से ऐसी बातें बतायेंगे कि आप चक्कर और चिन्ता में पड़ जायँ। इसके बाद उपाय के बहाने आपसे वे खूब ठग विद्या करेंगे।

एक बार ऐसा हुआ कि मैं एक क़स्बे में ठहरा हुआ था। पड़ौस मे किसी के बच्चा हुआ था। एक ऐसा ही ठग वहाँ जा पहुँचा। अवश्य ही उसने सुराग लगा लिया था। वहाँ पहुँच कर उस ने गणित द्वारा बता दिया कि इस घर में कोई जीव जन्मा है। उस पर चौथा चन्द्रमा है। अभी किसी भड्डरी को अमुक अमुक वस्तु दान करदो—वरना ख़ैर नही। लोगों ने भय-भीत होकर कहा—महाराज, आप ही यह दान ले लें—अब हम भड्डरी को यहाँ कहाँ पावेंगे। उसने कहा—नहीं, बाबा—यह दान जो लेगा उस पर आफत आवेगी, मै नहीं ले सकता, तुम किसी और को ढूँढो। यह कह चला गया। गली के दूसरी छोर पर एक भड्डरी खड़ा देख कर घर वाले उसे बुला लाये

और वे पदार्थ उसे दे दिये । पीछे देखा दोनों की मिली भगत थीं।

मुहुर्त बताने के इन के ढङ्ग सुनिये, गिनगिना कर और लकीर खींच कर कहेंगे—महाराज, असाढ़ शुक्ला ३ रविवार ३ घड़ी ९ पल चढ़े दिन का मुहुर्त बनता तो है।

आप सन्देह से कहेंगे। बनता तो है क्या माने, ठीक ठीक बताइये। अब वे पितलाया सा मुंह बना कर कहेंगे—

'और सब ठीक है' सिर्फ चन्द्रमा अपने घर का नहीं ! परन्तु दिन रविवार है, इससे हानि नहीं। आप यही मुहुर्त रखिये इस प्रकार पीछे के लिये अपना कुछ बचाव के निकाल ही लेते हैं। बहुधा लोग कहा करते हैं—

दिशा शूल ले जावे बांया, राहू योगिनी पूठ ।
सन्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट ॥

विवाह शादियों का तो एक खास साहलग होता है, उन दिनों के अलावा आप विवाह आदि शुभ कर्म कर ही नही सकते। बहुधा यह उस्ताद लोग विना मुहुर्त भी मुहूर्त का कुछ उपाय निकाल ही लेते हैं। एक पूजा बृहस्पति की कराई। एक दुघड़िया मुहूर्त भी होता है, जो बहुत आवश्यकता से जल्दी के कामो मे निकाला जाता है। बहुधा मुहूर्त के समय कही जाना न हो सके तो यारों ने उसका भी संशोधन निकाल रखा है अर्थात् प्रस्थान करके रख दिया जाता है—वह इस प्रकार, कि जाने वाला—अपने दुपट्टे में पांच मंगल पदार्थ—यथा सुपारी, मूंग, हल्दी, धनिया, गुड़

और एक चांदी का सिक्का बांधकर जिधर जाना हो उस तरफ घर से दूर रख आता है। बस फिर ३ दिन तक उस दुपट्टे के साथ जाने मे कोई ख़तरा नहीं रहता।

शकुनों का भी इन अवसरों पर अद्भुत प्रयोग होता है। एक बार कोटा के महाराज ज़ालिमसिंह उल्लू के बोल जाने पर महलों का निवास छोड़ कर खेतों में रहने चले गये थे। इसी प्रकार जयपुर नरेश ने मथुरा का प्रसिद्ध मन्दिर किसी अप शकुन के कारण ही अधूरा छोड़ दिया था। विद्यार्थी परीक्षा मे जाने से प्रथम शकुन देखते हैं। वैद्य रोगी देखने के समय शकुन देखते हैं चोर चोरी करने के समय शकुन देखते हैं। यह शकुन पशु पक्षियो की बोली, उनका दांयां बांयां होना व्यक्ति के सामने से होता है।

स्वप्न भी शकुनों से सम्बन्ध रखते हैं। रात को उल्लू का मकान पर आकर बोलना भारी अपशकुन समझा जाता है। एक बार एक वैद्यराज रोगी को देखने गये रास्ते में दाहिने तीतर बोला, आगे चले—ऊँट का पांव उखड़ गया। ऊँट वाले ने कहा—महाराज ये शकुन तो अच्छे नही। परन्तु वैद्य जी रोगी को अच्छा कर ५०० रु० लेकर घर लौटे। घरसे चलती बार साग सब्ज़ी सामने आना शुभ शकुन है, पानी के घड़े मिलना शुभ शकुन है, खाली मिलना अशुभ है। रोटियां शुभ और आटा अशुभ है। दही शुभ और दूध घी अशुभ हैं। सुहागन शुभ और विधवा अशुभ है। भंगी शुभ है। सुनार का मिलना अशुभ है। एक बार हम सीकर गये थे। एक

आदमी दौड़ता आया, सुनारों को सामने से हटाता चला, क्योंकि राजा साहेब की सवारी आ रही थी।

काने पुरुष का मिलना अशुभ है। गधा बांई ओर और साँप दांई ओर मिलना शुभ है। चलती बार टोकना अशुभ है। देवी देवताओं से भी शकुन देखे जाते हैं। मूर्त्ति के ऊपर चढ़ाई माला या फूल खिसक पड़ना अशुभ है। प्रायः देवी देवताओं के सामने आग पर नारियल की गिरी या घी डाला जाता है, यदि आग भभक उठे तो जोत जगना कहते हैं और कार्य सिद्धि का लक्षण समझते हैं। और भी बहुत से टोटके किये जाते हैं—जिन की गिनती नहीं हो सकती।

सर्प और छिपकली भी शकुन देखने की चीजें हैं। दो साँपों का लड़ना घर में लड़ाई होने का लक्षण है। दो साँपों का एक ही ओर जाना दरिद्र आने के समान है। सर्प को हरे वृक्ष पर चढ़ते देखना इतना अच्छा है कि देखने वाला सम्राट् होगा। राजा यदि साँप को पेड़ से उतरता देख ले तो अशुभ है। सोते हुए साँपका सिर पर फन फैलाना शुभ है। साँप को घर में प्रवेश करते देखना धन प्राप्ति का लक्षण है। भूमि पर मरा साँप देखना घर में होने वाली मृत्यु की सूचना है। छिपकली का अध्याय भी वड़ा टेढ़ा है। शरीर पर ६५ स्थान हैं उन पर छिपकली के गिरने से भिन्न २ शुभाशुभ फल होते हैं। प्रातः काल सो कर उठने पर शुभ शकुन देखने की हिन्दुओं को बड़ी फिक्र रहती है। प्रायः वे हथेली को रगड़ कर देखा करते हैं। क्योंकि पाखण्ड शास्त्र मे लिखा है :—

कराग्रे वसति लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
कर पृष्ठे च गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम् ॥

प्रायः कोई बुरी घटना होने पर लोग कहते हैं आज सुबह किस का मुह देखा था।

छींक भी शकुन की ख़ास निशानी है। शुभ अवसरों पर छींक होना निहायत वाहियात समझा जाता है। पर दो छींके होना शुभ है। खाते, पीते, सोते समय छीकना शुभ है।

नजर लग जाना भी भारत भर में फैला है। लोग कहा करते हैं कि नजर ऐसी कड़ी चीज है कि पत्थर को भी तोड़ सकती है। प्रायः बच्चों को नज़र का बड़ा ही भय रहता है। नजर उतारने के अद्भुत अद्भुत उपाय काम में लाए जाते हैं। माता, पिता, कुटुम्बी, सम्बन्धी चाहे भी जिसकी नजर बच्चे को लग सकती है। नजर से बचने के बड़े बड़े टोटके किये जाते हैं। काजल का टीका लगाया जाता है। नोन, राई उतार कर आग में डाली जाती है। राख चटा दी जाती है। मकानों को भी नज़र से बचाने के लिये ख़ास तौर पर चिह्नित कर दिया जाता है। नजर के डर से बहुत से सम्पन्न गृहस्थ भी बच्चो को साफ नहीं रखते न अच्छे वस्त्र पहनाते हैं।

बहुधा जिनके बच्चे कम जीते हैं वे उन्हे माँगकर वस्त्र पहिनाते है। और न जाने क्या क्या कार्य करते हैं जिनसे मनुष्य की बुद्धि का कोई भी सरोकार नही है। बहुधा बच्चा होने पर उसकी नाक में छेद करके लोहे की कील डाल देते हैं। और

उसका नाम नत्था या नथमल रख देते हैं। यह कड़ी उसके विवाह मे उसकी सास ही खोल सकती है, ऐसा मारवाड़ में रिवाज़ है। प्रायः जिनकी सन्तान मर मर जाती हैं वह माता किसी अन्य वालक के वाल या कपड़ा कतर लेती हैं, और इस यात का जव उस बालक के अभिभावकों को पता लगता है तो वड़ा भारी घर युद्ध होता है।

वच्चे के रूप की तारीफ़ करने से उसकी माता वुरा मान जाती है। वह उसे भद्दे रूप मे रखना और भद्दे नामो से पुकारना पसन्द करती है। प्रायः वह वच्चे को रोगी और दुवला वताया करती है। चाहे वह कितना ही मोटा क्यों न हो। वच्चे के रोगी होने पर नजर ही का सन्देह रहता है। फिर तो लाल मिर्चों की धूनी दी जाती है या देवी देवताओं का चरणामृत दिया जाता है।

इस पाखण्ड के आप जरा दो एक नमूने सुनिऐ—एक चलते पुर्जे ज्योतिषी जी ने देखा कि अमुक लाला जी रोज वेश्याओं मे घूमा करते हैं। उन्होंने अपनी सिद्धाई की शोहरत उनकी स्त्री तक पहुंचाई और वहाँ पहुंच भी गए। स्त्री ने अपना दुख रोया और पति को वश में करने का उपाय पूंछा—ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान का एक ही दिन में चमत्कार दिखाने का वचन दिया और २०) लेकर चम्पत हुए। अव वे लाला जी के पास गये। उन्होंने पूंछा—कहो महाराज, आज कल दिन कैसे हैं? ज्योतिषी जी ने पत्रा खोल, उंगली पर गिनती गिन कर कहा—तुम्हे तो आज मार

केश का योग है। कहीं न कही जान का खतरा है। लाला जी घबरा गये। उपाय पूंछा। ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान की सलाह दी और २०) वसूल कर चलते बने। चलती बार कह गये—शाम के ६ बजे से सुबह तक घर ही में रहना। किसी से इस ग्रह का हाल न कहना, न खयाल में लाना। उन्होंने यही किया। अनुष्ठान का हाथो हाथ फल पाकर स्त्री प्रसन्न हो गई। दोपहर को पण्डित जी फिर पहुंचे और स्त्री से २००) ठग लाए कि पक्का प्रयत्न हमेशा के लिये कर दूगा। पक्का इन्तजाम ऐसा हुआ कि बेचारी को कुछ दिन बाद और भी बुरा दिन देखना पड़ा।

एक ज्योतिषी जी को एक सेठानी ने बुलाकर कहा कि मेरा पति वेश्या के यहां जाता है कुछ उपाय कीजिए। उसने अनुष्ठान करने का वादा किया। उसने सेठ से कहा—आप के ग्रह ठीक नही, यदि आप उस स्त्री के पास अमुक तिथि तक जायेगें तो बड़ा घाटा रहेगा। उन दिनो घाटा हो भी रहा था। लाला घर मे सोने लगे। स्त्री ने प्रसन्न हो १००) नज़र कर दिये। वेश्या को पता लगा तो उसने उन्हे बुला कर बहुत लल्लो चप्पो की और २००) नज़र किये तब ज्योतिषी जी ने सेठ से कहा अब रास बदल गई है—उसके पास जाने से ही लक्ष्मी आवेगी। आँख और गांठ के अन्धे सेठ जी फिर वहां जाने लगे।

एक बार एक ज्योतिषी जी ने एक जिमींदार को, जिसका मुकदमा चल रहा था जाकर कहा आपके ग्रह बहुत अच्छे पड़े हैं यज्ञ करो मुकदमा जीतोगे। यज्ञ में भैंसे की बलि दी जायेगी। यज्ञ

किया गया और जीता भैंसा आग में डाल दिया गया । कुछ दिन बाद मुकद्मा वे जीत भी गये। और ज्योतिषी जी को १०००) रु० और दुशाला भेंट मिला। कहां तक हम इस प्रकार के उदाहरण दे। पाठक इसी से बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। इस लिये अधिक विस्तार न कर इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं ।

दशवां अध्याय



धर्म नीति

जिस काम में विचार शक्ति को काम मे न लाया जाय वह काम बेवकूफी में दाखिल है। आजकल प्रायः संसार भर के धर्म बेवकूफी ही कहलाए जा सकते हैं। क्योंकि प्रायः सर्वत्र ही यह कहा जाता है कि धर्म के काम में अक्ल को दख़ल नही है। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि धर्म के काम में अक्ल को दख़ल क्यों नहीं है। धर्म क्यों इतना बेसिर पैर की चीज़ है, क्यों युक्ति और नीति रहित है कि उस में सोचने विचारने से पाप लगता है।

मैं यह कहता हूँ कि मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्ति का यदि कही पर उपयोग हो सकता है—तो वह धर्म ही है। धर्म ही को गीता ने कर्म कह कर पुकारा है। कौन काम कर्म है, कौन नहीं—गीता कहती है कि यह निर्णय करने मे बड़े २ धुरन्धर शास्त्री विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं।

हम ने पीछे किसी अध्याय में कणाद मुनि के वैशेषिक सूत्र "यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" इस पर प्रकाश डाला है। इस वाक्य के साथ वहाँ जो और पंक्तियां लिखी हैं उन पर प्रत्येक पाठक को भली भाँति मनन करना चाहिये।

उस से अधिक मैं यह कहना चाहता हूँ कि सब से उत्तम धर्म वही है जिस में नीति की मर्यादा का अधिकाधिक पालन किया गया हो। यद्यपि आज संसार भर के मनुष्य नीति से धर्म को पृथक् किया चाहते हैं। परन्तु मेरी राय में यह असम्भव है।

नीति का निर्माण रीतियों पर चला है । सृष्टि के आदि से आज तक लोग अच्छी रीतियाँ चलाते और बुरी छोड़ते रहे हैं। बहुधा ऐसा होता है कि लोक लाज या दबाव से बहुत मनुष्य कुछ बुरे काम नहीं करते और कुछ अच्छे कर गुज़रते हैं। यद्यपि बुरे कामों के लिये उनके मन मे इच्छा और भले कामों के लिये अनिच्छा रहती है। परन्तु कुछ ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो मरने जीने या हानि लाभ को तनिक भी परवा विना किये, नीति मार्ग पर चले ही जाते हैं। इन दोनो प्रकार के मनुष्यों में अन्तर तो होता ही है। और वह अन्तर यही है कि अन्तरात्मा से काम करने वाले लोगो की नीति ही धर्म नीति है । यदि नीति और धर्म का समावेश न किया जायगा तो नीति कभी भी अच्छे मार्ग पर न चल कर कुराह पर ही चलेगी। वास्तव में बीज धर्म है और नीति का जल सिंचन करने से ही उस में शुभ अंकुर लगता है । केवल नीति के परिणाम स्वरूप ही हम अच्छे विचारों का निर्णय

कर सकते हैं। मनुष्य का साधारण ज्ञान हमें बताता है कि दुनिया कैसी है—परन्तु नीति हमे यह बताती है कि वह कैसी होनी चाहिये। और धर्म हमें उस लक्ष तक पहुँचाता है।

मनुष्य को उचित है कि वह शरीर, मन और मस्तिष्क की अलग २ जाँच करे। वह इस बात पर भी ग़ौर करे कि अन्याय, स्वार्थ, दुष्टता और अभिमान के क्या परिणाम होते हैं। यदि मनुष्य धर्म और नीति को संयुक्त करके विचारों का एक नक़शा (प्लान) तैयार कर ले और फिर उन पर वह अमल करे तो वह सही उतरेगा। नकशा बताता है कि घर कैसा बनेगा, घर बन जाने पर नकशा व्यर्थ है। इसी प्रकार नीति और धर्म के विपरीत आचरण करके नीति पर विचार करना व्यर्थ है।

नीति का नियम यह है कि हमारे अनुभव में जो सचाईयां आती जायँ उनके आधार पर हम अपने आचरणों को बनाते जायँ। जो मार्ग सच्चा है, वह चाहे बिल्कुल ही नया और अपरिचित क्यों न हो हमें उसे ग्रहण ही करना चाहिए। इसका यह अर्थ है कि हमे कट्टरता के सभी विचार त्याग देने चाहिए। और कट्टरता को जो आज कल के धर्मों का प्रधान लक्षण है, नीति मूलक धर्म का सबसे बड़ा दुश्मन समझना चाहिए।

उत्तम धर्म नीति क्या है—इस पर विचार करना भी आवश्यक है। अमुक कार्य से हमारा यह लाभ हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह धर्मनीति से पूर्ण है। और इसी प्रकार धर्मनीति के कार्य के लिये यह आवश्यक नही कि वह लाभदायक

हो। इसका अर्थ यह है जैसा कि बहुधा लोग किया करते हैं कि वे अपनी भलाई के काम करते हैं। धर्म नीति का आधार न तो मनुष्य की इच्छा पर ही है, और न स्वार्थ ही पर। ऐसे नीति निष्ठ और धर्मात्माओ का अभाव नही जिन्होंने सत्य शोधने के लिये कष्ट सहे और जानें दीं। इससे हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि धर्म वे निर्णय हैं जो मनुष्य के मत, स्वार्थ और इच्छा से भिन्न है। और उनके आधीन होना मनुष्य के लिये कर्तव्य है।

धर्म नीति के तीन मूल सिद्धान्त हैं। १— सत्य, २— भलाई ३—ईश्वरीय नियम।,ये तीनों चीजें जगत मे सदैव रहेंगी, चाहे सारी पृथ्वी के मनुष्य शैतान या अधर्मी क्यो न हो जायँ।

अनीति ही अधर्म है। पहले वह अनीति धर्म से पृथक दीख पड़ती है, पीछे वह धर्म के स्वरूप को प्रकट कर देती है। अन्याय और अन्धविश्वास आंधी की भांति उठते और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। सीरिया और बेबिलिन में अधर्म का घड़ा भरते ही फूट गया। रोम अधर्म अनीति पर चलने लगा और नष्ट हो गया। बड़े २ रोमन महापुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके। ग्रीस की चतुर प्रजा ग्रीस को अनीति के हाथ से न बचा सकी। फ्रांस का विद्रोह अनीति के ही विरुद्ध था। एक विद्वान का कहना है, अनीति को राज सत्ता सौंप दो—वह टिक न सकेगी।

क्रान्ति एक स्थिर सत्य है जो धर्म या नीति के विपरीत फर्जे जाल को नष्ट करती है। क्रान्ति सामाजिक जीवन का निरोगीकरण है।

हम सुकरात, मसीह, कृष्ण, दयानन्द और ऐसे ही हज़ारों लाखो मनुष्यों को इसी क्रान्ति की भेंट होते देखते हैं। जिन्होंने मिथ्या विश्वासो के विपरीत आवाज़ उठाई थी, जिनके कारण समाज निस्तेज और प्रभाशून्य होगया था। तत्कालीन सत्ताधारियो ने इन महात्माओं को खूब कष्ट दिया। मसीह को अपराधी के कटेहरे मे खड़ा कर, एक पुरुष ने गम्भीरता पूर्वक उसे अपराधी कहकर सूली पर चढ़ा दिया। महा तत्वदर्शी सुकरात को सामने खड़ा कर एक विद्वान् विचारक ने उसे विष पीकर मर जाने की आज्ञा दे दी थी। आज महात्मा गांधी अपना पवित्र और बहुमूल्य जीवन जेल की कलुषित दीवारो मे व्यतीत करते हैं। परन्तु ईसा की मूर्ति आधे संसार के राज मुकटो के लिये वन्दनीय है।

अन्ततः हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि सत्य, न्याय, और ईश्वरीय नियमों का पालन करने के लिये हमे निरन्तर क्रान्ति करना चाहिए। और कभी अपने व्यक्ति गत लाभ हानि को इससे सम्बन्धित नहीं होने देना चाहिये।

यदि ऐसा किया जायगा तो मनुष्य जाति का सच्चा धर्म मनुष्य पर सौभाग्य और सुख की वर्षा करेगा और सारे संसार के मनुष्य परस्पर मिलकर सच्चा भ्रातृ भाव प्राप्त करेंगे।

❀ इति ❀